।। नमः श्री वर्धमानाय ।।

वैराग्य

पहला सर्ग

मंगलाचरण

(हरिगीत)

बाल ब्रह्मचारी श्री भगवन,
आये तुम त्रिशला उर में।
विरुदावलि गाई देवों ने,
मिल ताल मृदंग उच्च स्वर में ।।
जीवन के उठते यौवन में,
तुमने अनंग को जीत लिया।
हो नमस्कार उन सन्मति को,
जिनने मुझको सत् ज्ञान दिया ।। १ ।।

नेमीश्वर को हो नमस्कार,
यादव कुल के जो कुलभूषण।
श्यामवर्ण के होने पर,
तन मन में नहीं एक दूषण।।
जिनकी भक्ति से प्रेरित हो,
जो कुछ उनके गुण गाता हूँ।
है नहीं शक्ति पर हे भगवन्!
भक्तिवश नहिं शर्माता हूँ।। २।।

मेरे शब्दों में शक्ति नहीं,
तब चरित रसायन पा करके।
मम वर्ण सुवर्ण खरे होंगे,
जीवन सरिता में नहा करके।।
समन्तभद्र अकलंक प्रभा,
अरु कुन्दकुन्द आचार्य महा।
जिनसेन और गुणभद्र गुरु,
आदिक श्री मुनिवर हुये यहाँ।। ३।।

उनने प्रभु के गुण गा-गाकर,
यह भक्तिमार्ग कर दिया सुगम।
उनके ही नाथ सहारे से,
तर जाऊँगा सागर दुर्गम।।
उस सरस्वती देवी माँ के,
जितने भी हुये पुजारी हों।
उनने पाया तेरा शरणा,
उनका मैं आज पुजारी हूँ।।४।। युग्मम्।।

उस द्वादशांगमय देवी के,
क्या कोई नर गुण गा पाये।
अनेकान्त अरु स्याद्वाद से,
वीर पुत्र जिसने जाये।।
जिसने अनेक पाखण्डों का,
इस जगती-तल पर नाश किया।
उस सरस्वती देवी माँ का,
मैंने भी शरणा आज लिया।। ५।।

जिनका स्वभाव है नम्र मृदुल,
औगुण की जाँच न करते हैं।
अरु किंचित् काव्यत्व देख,
अभिनन्दन करते रहते हैं।।
ऐसे सज्जन जगती-तल में,
उत्साहित तो कर सकते हैं।
उनको नमने से क्या होगा,
अवगुण तो नहीं निकलते हैं।। ६।।

हो नमस्कार उस दुर्जन को,
जो अवगुण ही देखा करता।
जिससे कवियों का काव्य ग्रन्थ,
निर्मलता को पाया करता।।
हे सुनो नाथ दुर्जन-प्रभो!
साबुन सी तेरी माया है।
मम काव्य-वस्त्र को धो देना,
ये ही मेरे मन भाया है।। ७।।युग्मम्।।

द्वारिका

(हरिगीत)

सुन सुन री हे सहचरि लेखनि!
अब नगर द्वारिका ओर चलें।
जो नेमिप्रभु की जन्मभूमि,
उस नगरी को भी देख चलें।।
तू काले मुख की नारी है,
वह श्वेत-मुखी सुन लेना प्रिय।
उसकी शोभा का वर्णन कर,
हम तुम पवित्र हो जावें प्रिय।। ८।।

बारह योजन की लम्बी है,
नव योजन उसकी चौड़ाई।
चौतर्फा परिखा कोट बने,
मानो अलकापुरी ही आई।।
आलम्बन के ना होने से,
क्या इन्द्रपुरी गिर पड़ी यहाँ।
नरपति ही मानो सुरपति हैं,
नर सुर से शोभें आज यहाँ।। ९।।

चौतर्फा चतु दरवाजे हैं,
मानो ब्रह्माजी ही बैठे ।
पंचानन के स्तूप बने,
मानो पंचानन ही बैठे ।।
दरवाजों के अन्दर देखो,
कैसे सुन्दर जनमार्ग बने ।
कूड़ा-करकट का नाम नहीं,
बंगलों में सुन्दर वृक्ष तने ।। १० ।।

हीरों मणियों की आभा से,
जगमग-जगमग वह चमक रही ।
रजनी दिन-सी मालूम पड़े,
पति से मिलने से सहम रही ।।
बाजारों में बैठे सराफ,
जौहरी व्यापारी पंसारी ।
ईमान न्याय, निश्छलता से,
विनिमय करती नगरी सारी ।। ११ ।।

ना कोइ दरिद्री दिखता है,
भिक्षुक मुनिगण ही मिलें वहाँ ।
औषधशाला भोजनशाला,
गौशाला शोभित जहाँ-तहाँ ।।
सुन्दर बावड़ियाँ कहीं-कहीं,
जिनमें निर्मल जल छलक रहा ।
पीत नील अरु श्वेत कमल का,
गन्ध मनोहर महक रहा ।। १२ ।।

कनकमयी सोपान बने,
मणिजड़ित मनोहर मादकतम।
पीताम्बुज की रज उड़ने से,
पीला जल है पर नहिं कर्दम।।
सुन्दर सर की शोभा विलोक,
ऐसा संशय हो जाता है।
बंदी होकर सरवर पुर में,
पद का प्रक्षालन करता है।। १३।।

बाँधा जाना पाया जाता,
केवल सर अरु बावड़ियों में।
गाली का कोई काम नहीं,
गावें नारीजन ब्याहों में।।
यदि मिलता वहाँ वर्ण-शंकर,
तो दीवारों पर चित्रों में।
और विनोदामृत बहता,
रहता है सदा सुमित्रों में।। १४।।

ऐसा कोई घर ना होगा,
जिसमें वन्ध्या नारी होवे।
घर-घर में शिशु खेला करते,
क्रीड़ा में ही बालक रोवें।।
अर भवनों की ऊँचाई लख,
संशय मन में हो जाता है।
थककर चकचूर हुआ रविरथ,
बस असमय में रुक जाता है।। १५।।

ऊपर मंजिल पर खड़ी हुई,
कामिनि–मुखचन्द्र निरखते हैं।
मावस को अरे! चन्द्र कैसे?
यों संशय भरे परखते हैं।।
मैलापन था अम्बर[१] में ही,
अरु मोह मिलेगा ग्रन्थों में।
ठग गोत्र मिलें बस जहँ केवल,
पर ठग नहिं मिलते नगरी में।। १६।।

अगर वहाँ चोरी होती तो,
बस दीनों के दुःखों की।
पर नारी की रमण वृत्ति,
चलती प्रायःकर वैद्यों की।।
यदि मिलता विनयाभाव कहीं,
दम्पति के भोग–विलासों में।
नहीं–नहीं ये शब्द मिलें,
बस भोजन की मनुहारों में।। १७।।

कोई दाता के मुख से तो,
ना शब्द कभी न निकलता था।
भय नहीं किसी को कोई है,
केवल पति–पत्नी को ही था।।
लो प्रातः होने आया है,
अब तो वियोग होगा प्रिय का।
इस भय के कारण नव बाला,
मुख देख रही है निज पति का।। १८।।

१. मलिनता आकाश में ही पाई जाती थी अन्यत्र नहीं।

जिन-मन्दिर थे उसमें अनेक,
मोहक ऊँची शिखरों वाले।
भक्तों की भीर भरी भारी,
भक्ति में सब सुध-बुध भाले।।
दिग्-अम्बर में ध्वनि छा जाती,
जयमाला की आवाजों से।
लख कर प्रसन्न जन-जन होता,
श्री जिनवर को दरवाजों से।। १९।।

मन्दिर के शिखर अनूपम थे,
रे कनक कलश सोहें जिन पर।
तिस पर ध्वज केशरिया फहरे,
वह चढ़ी जा रही स्वर्गों पर।।
यह ध्वज है अथवा विजय चिह्न,
या कीर्ति-पताका फहरी है।
यह है मुक्ति का मार्ग यही,
बतलाने इन पर लहरी है।। २०।।

सदन-सदन की शोभा का,
वर्णन करना आसान नहीं।
जिसकी रचना कुबेर ने की,
कुछ कहने को उपमान नहीं।।
पर अनुपमेय इतना कहना,
बस होगा तो पर्याप्त नहीं।
पर हो सकता क्या बतलाओ,
उसके समान जब अन्य नहीं।। २१।।

नगरी नागरि–सी शोभित है,
गजगामिनि कामिनि होने से।
मणि–हारों से सज्जित विशेष,
सुन्दर मनभावनि होने से।।
पुन्नाग–पती दोनों के हैं,
दोनों की सुन्दर शिखा लसे।
नगरी अरु नागरि के मन में,
जन हरदम सुख से सदा बसें।। २२।।

रचकर ऋषभादि जिनेश्वर की,
सब जन्मभूमि साकेतादिक।
वासुपूज्य की चम्पापुर,
कौशाम्बी चन्द्रपुरी आदिक।।
इक्कीस नगरियाँ रच करके,
जब पूर्ण कुशलता पा लीनी।
नेमि प्रभु की जन्मभूमि की,
फिर उसने रचना कीन्हीं।। २३।।

तुम्हीं बताओ फिर उसमें,
कैसे त्रुटियाँ हो सकती थीं।
था नहिं अभाव सामग्री का,
धनपति की पूरी शक्ति थी।।
चल[१] चल री लेखनि आगे बढ़,
अब राजमहल को देख जरा।
जिसमें तीर्थंकर नेमि रहें,
जीती है जिनने मृत्यु–जरा।। २४।।

१. यहाँ पुनः लेखनी को सम्बोधन है।

राजमहल

(हरिगीत)

द्वारिकेश के द्वारे पर,
दो द्वारपाल दो ओर खड़े ।
हैं कनक-दण्ड जिनके कर में,
हैं शूरवीर बलवान बड़े ।।
जहँ-तहँ देखो वे बन्दीजन,
अरु चारण विरद बखान रहे ।
नौबत अरु बीन बजे जहँ तहँ,
गायक स्वर में भर तान रहे ।। २५ ।।

बारह खम्भों पर खड़ा हुआ,
सुन्दरतम सभागार शोभित ।
विध-विध प्रकाशमय रत्नों की,
मणिमय आभा से आलोकित ।।
सभी सभासद हाजिर हैं,
यादवगण की यह राजसभा ।
विध-विध विचार विनिमय करती,
मानो चलती हो इन्द्रसभा ।। २६ ।।

भवनों की दीवारों में हैं,
चन्द्रकान्त मणि जड़े वहाँ।
जब चन्द्र-किरण आकर पड़ती,
झरना-सा झरने लगे वहाँ।।
दर्पण-सी चमक रहीं देखो,
दीवारें शयनागारों की।
नव-दम्पति भारी लजा रहे,
झाँकी लख कर प्रतिबिम्बों की।। २७।।

मधुमय स्नानागार बना,
मणि-जड़ित मनोहर मादकतम।
जिसमें हमाम स्नेह रखा,
रहता कंघा-कंघी हरदम।।
ऋतु के अनुसार गरम ठंडा,
जल हरदम रक्खा रहे वहाँ।
नौकर चाकर सेवक दासी,
रहते हरदम मौजूद वहाँ।। २८।।

सभी तरह के सब सुख-साधन,
पावन एवं मनभावन।
सहज भाव से सहज जुड़ रहे,
सभी तरह के संसाधन।।
जहँ तीर्थंकर श्री नेमीदेव अरु,
अधचक्री का हो रहना।
मणि जड़ित मनोहर महलों का,
बालकपन है वर्णन करना।। २९।।

वसन्त ऋतु

(हरिगीत)

थी राजसभा जुड़ रही आज,
सब ही सामन्त पधारे थे।
नेमिदेव बलदेव और,
कृष्णादिक बैठे सारे थे।।
मंत्री प्रोहित अरु ज्योतिषज्ञ,
कविजन भी वहाँ उपस्थित थे।
सब योग्य सुनिश्चित आसन पर,
मौनावस्था में स्थित थे।। ३०।।

आया वसन्त का पर्व महा,
कोयल कूः कूः कर कूज रही।
निर्धन लोगों की महाशत्रु,
क्रमशः सर्दी कर कूच रही।।
था गर्मी का आताप नहीं,
अर सर्दी की भी शीत न थी।
था समय आज ऋतुराजा का,
जन-जन में कोई भीत न थी।। ३१।।

तब समय परीक्षक कविवर ने,
सुन्दर कविता का गान किया।
मादकता युत जलक्रीड़ा का,
सबके मन में आह्वान किया।।
कवि की अनुपम कविता को सुन,
क्षणभर तो सब जन मौन रहे।
कर नेत्र बन्द हृदय-स्थल में,
सब ही कुछ ना कुछ सोच रहे।। ३२।।

तब मौन भंग कर कृष्णराय,
बोले - सुनिये हे नेमिदेव।
अग्रज बलदेव सुनो भाई,
भीमार्जुन अरु आचार्यदेव।।
कविवर की कविता सुन करके,
मन फूला नहीं समाता है।
जल-क्रीड़ा सब मिल करें आज,
ऐसा बस मन में आता है।। ३३।।

कितनी मनमोहक यह ऋतु है,
मानो यह नव परिणीता हो।
दोनों कामान्ध करें उसको,
जिसने अनंग को जीता हो।।
सरसों की आभा को विलोक,
ऐसा प्रतीत मुझको होता।
पीताम्बर ओढ़े नव बाला,
आँचल लहरा देती न्योता।। ३४।।

तरु के पत्तों को हिला-हिला,
हमको वह वहाँ बुलाती है।
आओ थोड़ी जल-केलि करें,
यह तरु से वह कहलाती है।।
मानो नव बाला निजपति को,
इंगित करती हो छुप करके।
कोई आवाज नहीं सुन-ले,
इंगित करती वह चुप रह के।। ३५।।

जिस तरह षोडसी बालायें,
निर्दय अनंग के बस होकर।
मिल जाना वे चाहें पति से,
अपना तन-मन-धन सब खोकर।।
उस तरह वसन्ती यह बाला,
व्याकुल होकर घबराती है।
वह कभी समझ हमको लज्जित,
देखो वह हमें चिढ़ाती है।। ३६।।

अब हमको भी यह उचित नहीं,
जो हम उसका अपमान करें।
जो हमें चाहती हो मन से,
उसका तो हम सन्मान करें।।
अतएव चलें जल-क्रीड़ा को,
बस और नहीं कुछ दिखे मुझे।
रनिवासों में आदेश करो,
क्षणभर दिनभर-सा लगे मुझे।। ३७।।

(दोहा)

सभा विसर्जित हो गई, सुनकर यह आदेश।
रनिवासों में भी तुरत, पहुँच गया संदेश।। ३८।।

(मनहरण कवित्त)

सत्यभामा आदि पटरानियाँ तैयार भईं।
सुध बुध सारी सब भूल गईं मंग में।।
एक साड़ी रखत औ दूसरी उठावत हैं।
फूली न समावें आज रानी सब अंग में।।
कोऊ मदकारी पिचकारी को संभारत है।
कोऊ व्यस्त होय रही नीले–पीले रंग में।।
कोऊ चाले अगल में कोऊ चाले बगल में।
कोऊ आगे–पीछे सब चालें संग–संग में।। ३९।।

नेमिदेव कृष्णदेव और बलदेव चाले।
और भी अनेक भूप चाले राज–बाग में।।
एक पग यहाँ पड़े अन्य तहँ जाय पड़े।
मानो कृष्ण आज जल रहे काम आग में।।
और मन मस्त मदमत्त गजराज इव।
बैठे हैं वसन्तराज आज राजबाग में।।
और ताको प्रमुख है सेनापति कामदेव।
सभी मद–मस्त हुये ताके रंग–राग में।। ४०।।

।। पहला सर्ग समाप्त।।

दूसरा सर्ग

उपवन

(हरिगीत)

यहाँ से जा रहे यादव-नरेश,
सन्नद्ध वहाँ वनराज खड़े ।
मानो दो दल युद्धस्थल में,
समरेच्छा से दो ओर अड़े ।।
इस ओर खड़े बलदेव वीर,
वन में वनदेव विराजे हैं ।
इस ओर कृष्ण यदुराजा हैं,
वहाँ पर ऋतुराज विराजे हैं ।। १ ।।

यहाँ पर अर्जुन से योद्धा हैं,
वहाँ पर भी अर्जुन वृक्ष महा ।
रे भीम गदाधर यहाँ खड़े,
द्रुम भीम भयंकर लसे वहाँ ।।
नेमी जिन ज्यों यादव गण में,
त्यों मंदिर में श्री जिन सोहें ।
रानी पटरानी चले यहाँ,
लतिका वल्ली तहँ मन मोहें ।। २ ।।

इस तरह दुतर्फी दो सेना,
पूरी समानता थी धारें।
ऋतुराज कन्यका मदनश्री,
थी खड़ी स्वयं को सिंगारें।।
मानो कन्या पर मोहित हो,
कर दी चढ़ाई कंसारी ने।
अतएव यहाँ ऋतुराजा को,
ललकारा आज मुरारी ने।। ३।।

अंजन-तिलकावलि शोभित है,
यह नाक-कन्यका मानो हो।
हरित पत्र सम साड़ी है,
आराम[1] का मात्र बहाना हो।।
मन्द पवन के चलने से,
पत्रावलि किंचित् डोल रही।
सेना निहार यादव गण की,
थर-थर-थर मानो काँप रही।। ४।।

लिपटी वल्ली है द्रुमदल से,
ऐसी प्रतीत मुझको होती।
विक्रम सुनकर यदुभूषण का,
डर से पति के सन्मुख रोती।।
अर्ध-रात्रि के होने पर,
रणभेरी सुन वह काँप रही।
पति के शुभ में शंका विलोक,
मानो पति से वह लिपट रही।। ५।।

१. बगीचा

कहती है प्रिय मैं आज तुम्हें,
जाने ना दूँगी इस रण में।
है व्याप रहा तेरा सनेह,
मेरे जीवन के कण-कण में।।
यदि ऐसी बात नहीं होती तो,
क्यों अब तक वह लिपटी है।
दो पहर हो गये हैं दिन के,
बेशरम अभी तक चिपटी है।। ६।।

शोभा लख कर नन्दनवन-सी,
ऐसी शंका होती मन में।
ऋतुराज वसन्तीबाला का,
क्या ब्याह हो रहा है वन में।।
नहिं तो वल्ली के ब्याजरूप,
क्यों तोरण सोहें द्वारे पर।
कोयल के छल से बतलाओ,
क्यों बीन बज रही द्वारे पर।। ७।।

क्यों बरसाने के लिये अरे,
पुष्पों के गुच्छे द्रुम लेकर।
कर रहे प्रतीक्षा दम्पति की,
जो नव परिणय को हैं तत्पर।।
क्यों कल-कल करके पक्षीगण,
चारण से विरद बखान रहे।
भौरें भन-भन करके मानो,
नाचे अरु कर गुणगान रहे।। ८।।

चम्पा गुलाब गेंदा महकें,
केवड़ा चमेली मदशाली।
सूर्यमुखी केतकी आदि भी,
गन्ध कर रही मतवाली।।
अमल कमल के पुष्पों पर,
मनमोहक अलि गुंजार रहे।
सुमनों के रस को चख-चख कर,
झन-झन-झन-झन झंकार रहे।। ९।।

झर-झर-झर-झर सुन्दर झरने,
झरकर चहुँ ओर पुकार रहे।
जल-क्रीड़ा का लो मजा यहाँ,
तहँ बैठे क्यों झख मार रहे।।
सुन्दर जल-कुण्ड बने जहँ-तहँ,
कुछ गोलाकार मनोहर हैं।
कुछ सोहें चतुकोणे वाले,
मानो मोहक पद्माकर हैं।। १०।।

ऐला केला पुंगी लवंग,
सीताफल आदिक फल सोहें।
अमरूद आम अंगूर और,
श्रीफल अनार फल मन मोहें।।
शुभ सेव सन्तरादिक सुन्दर,
खारक जम्बूफल लसे वहाँ।
वर बेर विजोरा खरबूजा,
ककड़ी काशीफल लसे जहाँ।। ११।।

लम्बे चौड़े पत्ते वाले,
रम्भा पादप की ओर देख।
ऐसा प्रतीत होता मानो,
तरुवर सज्जित रम्भा विशेष।।
पुंगी पादप लवंग के तरु,
या वेलि केलि कर रही वहाँ।
नारिकेल द्रुम खम्भों से,
उत्तुंग ध्वजा से लसे वहाँ।। १२।।

बरगद अरु आम तथा पीपल,
लम्बी चौड़ी छाया वाले।
खुद तो आताप सहें रवि का,
पथिकों को सुख देने वाले।।
मनमोहक वृक्ष अनेकों हैं,
चन्दन के शीतलता दायक।
लतिका इलायची की लिपटी,
मानो लिपटें नारी-नायक।। १३।।

कहिं पर मणिमय स्तूप बने,
श्लोक लिखे जिन पर सुन्दर।
रे कुंज-विहारी जन आकर,
देखें तो कूद रहे बन्दर।।
बैठे स्तूपों के ऊपर,
या तो वृक्षों पर चढ़ जाते।
नर-नारी को आता विलोक,
द्रुत गति से सदा भाग जाते।। १४।।

मर्कट की चंचलता विलोक,
मनमर्कट चंचल हो जाता।
देखो वह मर्कटि-कपोल,
छू-छू कर प्रेम जता जाता।।
दाड़िम बीजों को ला-ला कर,
उसके मुँह में दे जाता है।
इस तरह केलि कर वह मर्कट,
आनन्द-वदन भग जाता है।। १५।।

द्रुमराज शोक हरने वाला,
शोकाकुल सभी मानवों का।
सुन्दर अशोक शोभे वन में,
जिसको भय नहीं दानवों का।।
उस ही अशोक तरु के नीचे,
शंकायें मन की सब खोकर।
बैठे ऋतुराज वसन्तमाल,
आगा पीछा सुध-बुध खोकर।। १६।।

तहँ राजहंस अनुपम विलोक,
सोचें यों राजहंस मन में।
हम से पहले ये राजहंस,
कैसे आ पहुँचे इस वन में।।
मोहक मयूरनी घूम रही,
शीतंकर पंखे धारण कर।
परिमित इन्दू हैं जगती में,
कह देना उचित न विद्वद्वर।। १७।।

कौआ कोयल का गाना सुन,
उस पर सर्वस्व लुटाता है।
बोलो प्यारी बोलो प्यारी,
वह यों कहता ही जाता है।।
देखो वह शुक निज नारी को,
प्रिय प्रिय कह कर वह रहा बुला।
प्रियतम प्रियतम कहकर नारी,
सुध बुध सब अपनी रही भुला।। १८।।

माली हैं यही सुमाली हैं,
पाताल लंक-सा बाग महा।
मानो दशकण्ठ सु रावण के,
आ बैठे पूर्वज आज यहाँ।।
माल्यकार की नव बाला,
देखो वह माला बना रही।
सुरभित सुमनों को गूँथ गूँथ,
हमको लख कर वह लजा रही।। १९।।

कितनी अनुपम है वनस्थली,
बाजारू औरत हो मानो।
दोनों जन-जन की भोग्य वस्तु,
अरु हंस-गामिनी पहचानो।।
वनस्थली की शोभा लख,
आपस में राजहंस बोले।
देखो स्वागत कर रही आज,
इंगित करती हौले-हौले।। २०।।

वह झाँक रही है खिड़की से,
छुप करके मदनश्री बाला।
वह मौन निमंत्रण देती है,
करती है मन को मतवाला।।
देखो वह मन्द पवन आकर,
हमको छूकर भग जाती है।
मदमत्त सखी वह पवनश्री,
कामुक होकर अलसाती है।। २१।।

इस तरह यहाँ पर राज युवक,
आपस में बातें करते थे।
और वहाँ नारी गण भी,
कुछ बातें करते चलते थे।।
सतभामा कहे रुक्मणि से,
सुन लेना मेरी प्रिय बहना।
यदुराज आज मोहित होंगे,
तुझ पर तेरा लख कर गहना।। २२।।

तेरा यह हार मनोहर है,
मादक बासन्ती साड़ी है।
पीताम्बर सी शोभा देती,
शीतंकर वदन मध्य में है।।
तेरी मुद्रा को लख करके,
रति भी लज्जित हो जावेगी।
यदुपति की दृष्टि हट करके,
हम पर कैसे आ पावेगी।। २३।।

लज्जित होकर रुक्मणि बोली,
क्यों मेरी हँसी उड़ाती हो।
मेरी बेकार प्रशंसा कर,
क्यों मुझको वृथा चिढ़ाती हो।।
तेरे कपोल की लाली अरु,
दाँतों की श्वेत प्रभा लख कर।
काले कच अरु हरिताम्बर ने,
इन्द्रधनुष की शोभा कर।। २४।।

हरि प्रभु को मोह लिया पहले,
फिर उपालम्भ मुझको देती।
तुम को विद्या है कौन सिद्ध?
जिससे सब का मन हर लेती।।
इस तरह परस्पर बातचीत,
नर-नारी करते जाते थे।
जलक्रीड़ा की आतुरता से,
आगे ही बढ़ते जाते थे।। २५।।

चलते-चलते कुछ क्षण पीछे,
आराम-द्वार पर आते हैं।
गजरथ हयरथ को छोड़-छोड़,
धरणी पर सभी उतरते हैं।।
पैदल ही सब क्रीड़ा-प्रेमी,
अन्दर प्रवेश कर जाते हैं।
तरु पुष्पों की वर्षा करके,
अपने को धन्य मनाते हैं।। २६।।

मोहक पलाश द्रुम केहरि–सा,
रक्ता सुमनों को बरसाता।
मानो गुलाल क्षेपण करके,
मादक हो मन में हर्षाता।।
पदम सुमन छुप गये सभी,
उन किला रूप जल–कुण्डों में।
भय था कि हमको तोड़–तोड़,
बाँधेगी नारी मुण्डों में।। २७।।

कोई झरनों की ओर बढ़ा,
कोई सर की शोभा निरखे।
कोई कुण्डों पर बैठा है,
कोई जल आकर स्पर्शे।।
कोई गुलाब का फूल तोड़,
उसकी शोभा को देख रहा।
कोई चम्पा की कली देख,
मन ही मन में कुछ सोच रहा।। २८।।

कोई ताजे अंगूर तोड़,
उनका रस स्वाद परखता है।
कोई कामी जन छुप करके,
नारी मुखचन्द्र निरखता है।।
कोई स्तूपों के शिलालेख,
मन ही मन में कुछ पढ़ते हैं।
कोई देख रहा बन्दर विशेष,
जो फल के पीछे लड़ते हैं।। २९।।

कोई जल अंजलि में लेकर,
अपने प्रेमी पर छिड़क रही।
कोई गुलाबजल कर में ले,
प्रियतम के मुख पर छिड़क रही।।
कोइ प्रेमी अपनी सहचरि के,
कर युग कपोल पर रख देता।
मलकर गुलाल उसके मुख पर,
उसका मन वश में कर लेता।। ३०।।

नेमीश्वर रुक्मणि खेल रहे,
आपस में मिल करके होली।
आकर के कृष्ण बीच में ही,
करने लगते हैं रंगरेली।।
पीछे से आकर सतभामा,
मुख को गुलाल से रंग देती।
श्रीकृष्ण देखते रह जाते,
सब मिलकर उन्हें पकड़ लेतीं।। ३१।।

श्री नेमिनाथ को शान्त देख,
उनसे मजाक करने लगतीं।
अर विविध विविध क्रीड़ा करके,
उनके मन को हरने लगतीं।।
रुक्मणि सतभामा ने मिलकर,
नेमीश्वर का मुख रंग डाला।
पर प्रभुवर ने कुछ नहीं किया,
हँस कर स्नेह बता डाला।। ३२।।

(मनहरण छन्द)

बोलि रुक्मणि सुनो मेरे प्रिय नेमि देवर।
बनकर आज बींद[1] आयो ऋतुराज है।।
उन्नत पयोधर कमल के हैं मानो नेत्र।
वापिका बनी है बनी आवे उसे लाज है।।
लाज नहिं आवे यदि काय तल माहिं बैठी।
कुँज की लताओं में क्यों खेलत न आज है।।
ब्याह के समय नेकु सबै लाज आवत है।
ब्याह बाद देवरजी क्या ही सुख साज है।। ३३।।

(दोहा)

जलक्रीड़ा आनन्द मय, होती रही विशेष।
पश्चिम दिश में पहुँच कर, रक्तिम हुआ दिनेश।। ३४।।

(सोरठा)

निज घर पहुँचे राय, जल-क्रीड़ा को पूर्ण कर।
अरु मन में हरषाय, कल आने को कह गये।। ३५।।

।। दूसरा सर्ग समाप्त।।

१. दूल्हा

तीसरा सर्ग

जल–क्रीड़ा

(हरिगीत)

प्रातःकाल के होते ही,
सब उपवन में आ जाते हैं।
फिर उसी तरह जल–क्रीड़ा में,
सब तन–मन से जुट जाते हैं।।
तन कूद रहा जल–कुण्डों में,
मन कूद रहा नारी जन में।
छींटा–छाँटी छीना–झपटी,
हो रही आज फिर उपवन में।। १।।

बिखर गये हैं केश किसी,
नारी के, उन्हें संभाल रही।
न जाने वह किस शंका से,
चौतर्फा दृष्टि डाल रही।।
इक रानी पिचकारी ले,
जेबों से रंग निकाल रही।
भर कर उमंग अपने मन में,
रंग नेमीश्वर पर डाल रही।। २।।

कोई दम्पति सर में कूदे,
वे दोनों मिल कर तैर रहे।
कुछ डूब-डूब छिप जाते हैं,
कुछ मिलकर उनको ढूँढ रहे।।
कोई नारी की ठोड़ी को,
अपने कर-कमलों में लेकर।
हे चन्द्रमुखी! क्या कहूँ आज हूँ,
सुखी तुम्हें सब कुछ देकर।। ३।।

घनश्याम कहें देखो रुक्मणि,
बँदरी बन्दर को मना रही।
वह रूठ रूठ भग जाता है,
वह उसके पीछे भाग रही।।
कर जोड़े शीश नवाती है,
पर वह आपे से बाहर है।
वह तो बन्दर है नहीं आज,
केहरि है अथवा नाहर है।। ४।।

रुक्मणि तब हँसकर बोल उठी,
नर ऐसे ही निष्ठुर होते।
नारी जन को तड़पाने में,
प्रायः कर पूर्ण चतुर होते।।
हँस-हँस कर नाथ आज मुझको,
क्यों बारम्बार निहारत हो।
तुम भी क्या मनवाना चाहो,
अथवा कुछ और विचारत हो।। ५।।

नारी भी नाथ मनाने में,
रोने धोने औ गाने में।
पीहर जाने घर आने में,
रहती है कुशल बहाने में।।
जो है आनन्द मनाने में,
अथवा जो है मनवाने में।
वह आनन्द नहीं है प्रभु,
इन्द्रों की पदवी पाने में।। ६।।

रुक्मणि का प्यार भरा उत्तर,
पाकर गद्‌गद् हो जाते हैं।
उर से रुक्मणि को लगा कृष्ण,
कुछ देर खड़े रह जाते हैं।।
सतभामा प्रेम-पास लखकर,
व्याकुल होती घबराती है।
सौतिया डाह से वह जलकर,
अति शीघ्र भागती आती है।। ७।।

मुँह से कुछ भी नहिं बोल रही,
नेत्रों से साफ झलकता है।
रुक्मणि ही क्या पटरानी है,
हे दैव! आज क्या दिखता है।।
यदुराज कृष्ण मुरली वाले,
नारी विज्ञान विशारद हैं।
वे समझ गये सब कुछ लखकर,
अतएव इधर को आवत हैं।। ८।।

बोले सतभामा से आकर,
हे प्रिये कहाँ थी तुम अब तक ।
आनन्द अधूरा रहता है,
हाजिर नहिं होती तुम जब तक ।।
तुमरे बिन इनकी जोड़ कहाँ,
इनके बिन तथा तुम्हारी भी ।
दो तरफ खड़ी हो तुम दोनों,
तब शोभा बने हमारी भी ।। ९ ।।

सुनकर सतभामा पटरानी,
बोली क्यों बात बनाते हो ।
चिकनी चुपड़ी बातें कहकर,
क्यों मुझे नाथ भरमाते हो ।।
पति की प्यारी रुक्मणि बहना,
चिर जीती रहे चाहती हूँ ।
लखकर पतिदेव प्रसन्न तुम्हें,
अपने को खुशी मनाती हूँ ।। १० ।।

उल्टी सीधी बातें सुनकर,
आगे बढ़कर यादव नरेश ।
सतभामा को उर से चपेट,
कहने लगते फिर यादवेश ।।
नारी शंकालु होतीं हैं,
क्या नहीं जानते हम रानी ।
सामान्य नारि से आगे बढ़,
क्यों करती हो तुम मनमानी ।। ११ ।।

यहाँ तो रुक्मणि अरु सतभामा,
गोपीवल्लभ से खेल रहीं।
थक कर वहाँ गोरी गान्धारी,
लक्ष्मणा सुशीला बैठ रहीं।।
पद्मावति अरु जाम्बवती भी,
इतने में आ जाती हैं।
छीना झपटी कर आपस में,
बातें करने लग जाती हैं।। १२।।

गोरी बोली सुनना बहना,
देवरजी भोले भाले हैं।
गांधारी बोल उठी इकदम,
निश्चल हैं बड़े निराले हैं।।
किन्तु अभी तो भोले हैं,
पर शादी तो हो जाने दो।
फिर देखो उनकी निश्चलता,
घूँघट देवी को आने दो।। १३।।

शादी की बात करो उनसे,
कहने लगते बरबादी है।
पर तूने क्यों नहिं कहा बहिन,
बर्बादी नहिं आबादी है।।
जो रहा वि-शादी ही जग में,
बन जाता पूर्ण विषादी है।
पर है विषाद की दवा एक,
बस वह तो केवल शादी है।। १४।।

इकदम चक्रित हो पद्मावती,
यों बोल उठी वे बैठे हैं।
देखो री एकाकी गुपचुप,
नेमी लालाजी बैठे हैं।।
सबकी ग्रीवायें घूम गईं,
मुख बोल उठा आओ आओ।
लाला – लाला – लाला – लाला –
लालाजी जरा इधर आओ।। १५।।

भाभी देवर की ओर गईं,
देवरजी उनकी ओर चले।
कोइ कहती है आये–आये,
चल दिये चले चल दिये चले।।
गांधारी इकदम बोल उठी,
मैं एक प्रश्न करना चाहूँ।
नहीं–नहीं बोली गोरी,
मैं तो दो का उत्तर चाहूँ।। १६।।

प्रश्नों–प्रश्नों की झड़ी लगा,
क्या सब पीछे पड़ जाओगी।
बहना आने दो जरा इधर,
क्या वहीं से उन्हें भगा दोगी।।
अच्छा लालाजी आओ तो,
बतलाओ क्यों नहिं करते हो।
क्या करना धरना कहो मुझे,
शादी तुम क्यों नहिं करते हो।। १७।।

भाभी मेरी जब हैं अनेक,
शादी का मुझको क्या करना।
हे भावी समय निहार हाल,
न मुझे रुचि शादी करना।।
यदि इसी तरह सब लोग सोच लें,
बालाओं का क्या होगा।
बालायें तो अबलायें हैं,
उनको आश्रय पाना होगा।। १८।।

माना नर को जीवन मग में,
आवश्यकता नहीं नारियों की।
पर आश्रय के बिना कहो,
क्या होगी दशा नारियों की।।
अरे! अरे! बालायें भी क्यों,
नहिं बन जावें प्रबलायें।
नारी समाज भी हो स्वतंत्र,
अबला बन जावें सबलायें।। १९।।

हँसकर सब बोल उठीं इकदम,
लालाजी पूरे योगी हैं।
पर योग ज्ञान की यह बातें,
इस समय नहीं उपयोगी हैं।।
सब जग हो जावे लाला-सा,
अहाहा कितना अच्छा होगा।
पर अनादि की सृष्टि प्रक्रिया,
का अवश्य नाश होगा।। २०।।

लालाजी इन उपदेशों को,
जगती पर मत फैला देना।
नर-नारी के इस जीवन को,
बिलकुल नहिं नाथ मिटा देना।।
सब लगी तालियाँ पीट-पीट,
हँसने, बोलीं देना होगा।
आश्रय इक राजकुमारी को,
देना होगा, देना होगा।। २१।।

देवर-भाभी की यह क्रीड़ा,
यदुराजा छुप कर देख रहे।
सुनकर बातें रसभरी कृष्ण,
मन ही मन में कुछ सोच रहे।।
इतने में वहाँ सुशीला ने,
गोपीवल्लभ को देख लिया।
कह उठी छुपे क्यों यदुराजा,
हमने पहले ही देख लिया।। २२।।

लख करके देवर-भाभी को,
मुझको प्रसन्नता होती है।
बातें सुनकर मीठी-मीठी,
रसभरी मृदुल जो होती हैं।।
छुप करके यदि मैं न देखूँ,
तो मुझे देखना है दुष्कर।
शर्मा जाता है अनुज तथा,
तुम नहीं बोलती हो दूभर।। २३।।

रुक्मणि तब इकदम बोल उठी –
लुकना छुपना चोरी करना।
है रहा आपका सदा काम,
छल करना, सबका मन हरना ।।
मुझको भी तो चोरी करके,
छल करके और अकड़ करके।
लाये थे इतना नहीं किन्तु,
शिशुपालादिक से लड़ करके ।। २४ ।।

अच्छा मैं तो बस चोर सही,
अरु छली प्रपंची झगड़ालू ।
मैं जैसा हूँ तुम मेरी हो,
तेरी शोभा निहार डालूँ ।।
माना मैं चोर हुआ क्योंकि,
मैंने छुप कर तुमको चोरा ।
पर बतलाओ तो तुम्हीं प्रिये,
पहले मेरा मन क्यों चोरा ।। २५ ।।

अरे तुम्हारी मर्जी बिन क्या,
तुम्हें चुरा कर लाया था।
तुम स्वयं चाहती थीं मुझको,
तुमने ही मुझे बुलाया था ।।
तुम थी प्रसन्न भरपूर तुम्हारे,
दिल ने मुझे पुकारा था।
मैं भी तेरा मतवाला था,
इसलिये दौड़कर आया था ।। २६ ।।

जाने दो चोरा-चोरी को,
कह लो कहना जो मनमानी।
पर चलो अनुज हे नेमिनाथ!
एवं तस्कर की पटरानी।।
जल-कुण्डों की ओर चलें,
कूदेंगे गोता खा-खाकर।
चलो-चलो ओ शीघ्र चलो,
बोले वे किंचित् मुस्काकर।। २७।।

मणिजड़ित मनोहर कुण्डों में,
वे गोते खूब लगाते हैं।
गीले कपड़ों को बदल कृष्ण,
उस ओर चले वे जाते हैं।।
लखकर गीले कपड़े रुक्मणि,
झट साबुन से धो देती है।
अपनी दृष्टि से सब जन को लख,
सबका मन हर लेती है।। २८।।

नेमीश्वर भी जल-क्रीड़ा को,
पूरण कर वस्त्र बदलते हैं।
उस समय नेमिप्रभु इन्द्रों क्या,
अहमिन्द्रों सदृश लगते हैं।।
उनकी शोभा का क्या कहना,
जो तीन लोक के स्वामी हैं।
तीन ज्ञान के धारी हैं,
अरु मुक्तिरमा के स्वामी हैं।। २९।।

गीली धोती को फेंक इसे,
बोले भाभी धो देना तुम।
हंसकर कहते यों गये सुनो,
जो कुछ चाहो ले लेना तुम।।
कुड़कर सतभामा बोल उठी,
क्या तुमने शंख बजाया है।
क्या चढ़े नागशय्या पर तुम,
क्या शार्वर-धनुष चढ़ाया है।। ३०।।

जो इन कामों को कर सकता,
उनकी धोती मैं धोती हूँ।
श्री कृष्णराज को छोड़ किसी की,
धोती मैं नहिं धोती हूँ।।
विस्मित हो बोले नेमिश्वर,
क्या यह हैं कोई काम बड़े।
करके दिखलाओ तो तुम भी,
यदि काम नहीं हैं बड़े-चढ़े।। ३१।।

ऐसा कह कर सतभामा ने,
अग्नि में घी तो डाल दिया।
पर रुक्मणि-देवी ने इकदम,
धोती को धोकर डाल दिया।।
नागों की शय्या पर जिनवर तो,
खुशी-खुशी चढ़ जाते हैं।
चढ़कर शय्या पर धनुष चढ़ा,
वह शंख बजाते जाते हैं।। ३२।।

टंकार धनुष की सुन करके,
दिग्गज भी घबड़ा जाते हैं।
गज-अश्व आदि पशु-पक्षी भी,
व्याकुलता खूब मचाते हैं।।
यह अद्‌भुत शब्द महा सुनकर,
बालक रोते अकुलाते हैं।
भय के मारे वे कोमल शिशु,
माता से चिपटे जाते हैं।। ३३।।

पृथ्वी हिलने से शेषनाग का,
फण नीचे को दबक गया।
दिग्गज अरु दिग्पालों का भी,
रोम-रोम हो गया खड़ा।।
ऐसा मालूम पड़े क्या अब,
है महाप्रलय होने वाला।
क्या होता है भगवान अरे,
तू ही रक्षा करने वाला।। ३४।।

सुनकर शब्दों को घोर महा,
महाराज कृष्ण भी काँप उठे।
सिंहासन से उठ खड़े हुये,
मानो नभ में घनश्याम डटे।।
जाकर देखो यह कौन धूर्त के,
काल निकट अब आया है।
मृगशावक मृगपति के मुख में,
अब भोजन बनकर आया है।। ३५।।

इस तरह शब्द यदुपति के सुन,
मंत्रीगण दौड़े गये वहाँ।
आकर देखा तो नेमिराज को,
पाया करते कार्य वहाँ।।
लखकर मंत्री नेमीश्वर को,
इक शब्द न मुँह से बोल सका।
घबड़ा कर देखे यत्र-तत्र,
पर मुँह बिल्कुल नहिं खोल सका।। ३६।।

पौरजनों[१] के कहने से,
उसने जो था सब जान लिया।
अभिमानी नारी की मति को,
तत्क्षण उसने पहचान लिया।।
तब आकर कृष्ण मुरारी से,
उसने यों वचन उचारे हैं।
तीर्थराज नेमीश्वर जो,
सबकी आँखों के तारे हैं।। ३७।।

श्री पटरानी सतभामा ने,
जल-क्रीड़ा में अपमान किया।
उनकी धोती को न धोकर,
अपशब्द कहे अभिमान किया।।
अतएव नाथ नेमीश्वर को,
कोपानल ने जब घेर लिया।
सतभामा के वचनानुसार,
भगवन् ने यह सब कार्य किया।। ३८।।

१. नागरिक

यदुराज वहाँ पहुँचे झट-पट,
जहँ नेमिनाथ विराजे हैं।
नागों की शैय्या नीचे है,
मानो नागेन्द्र विराजे हैं।।
'प्रिय अनुज किया तुमने यह क्या',
- बोले यों तब यादव-नरेश।
नारी के कहने से केवल,
यों क्रुद्ध हुये हो तुम जिनेश।। ३९।।

तुम तीर्थंकर हो जगत्-पूज्य,
अद्भुत हो प्रतिभाशाली हो।
इस समय जगत में सर्वश्रेष्ठ,
एवं अद्भुत बलशाली हो।।
मैं तुम्हें समझता हूँ प्रियवर,
नारीजन तुमको क्या जानें।
वे होती हैं स्थूल-बुद्धि,
अतएव तुम्हें क्या पहिचानें।। ४०।।

वह तो तेरी ही भाभी थी,
उसको तुम वहीं डाँट देते।
इन जरा-जरा सी बातों पर,
इतने व्याकुल तुम क्यों होते।।
यदि कोई बाँका वीर अनुज,
अपमान आज तेरा करता।
मेरे हाथों से सच कहता,
असमय में यहाँ आज मरता।। ४१।।

उठो-उठो इस शय्या से,
फूलों की शय्या पर सोओ।
अपराध क्षमा करके जिनवर,
हम पर अब तुम प्रसन्न होओ।।
इतने में रानी सतभामा,
आयुधशाला में आ पहुँची।
बैठा लखकर नेमीश्वर को,
नागों की शय्या पर, सकुची।। ४२।।

बोली, सुनना नेमी देवर,
मैंने तुमको नहिं पहचाना।
तीर्थंकर तुम्हें जानकर भी,
कह डाला मैंने मनमाना।।
मैं हूँ अभागिनी मतिमूढ़ा,
अपमान किया जगत्राता का।
पर ध्यान नहीं है क्या तुम को,
गोपीवल्लभ-से भ्राता का।। ४३।।

अब तो अपराध क्षमा मेरा,
कर दो हे नेमि जिनेश्वरजी।
इतना कहकर वह मौन रही,
मुस्काये तब जगदीश्वरजी।।
लखकर उनकी प्रसन्न मुद्रा,
सबके मन में सन्तोष हुआ।
घबड़ाये थे जो पुरवासी,
सुन समाचार संतोष हुआ।। ४४।।

तब लगी भीड़ छटने क्रमशः,
सब अपने घर की ओर गये ।
सानुज घनश्याम चले मानो,
नभ में श्यामल घनघोर गये ।।
भोजनशाला में जाकर के,
दोनों ने भोजन साथ किया ।
इस तरह मना नेमीश्वर को,
गोपीवल्लभ ने श्वाँस लिया ।। ४५।।

(सोरठा)

हुआ कृष्ण पर आज, इस घटना का जो असर।
चिन्तित हैं यदुराज, आवत निद्रा है नहीं ।।४६ ।।

(मनहरण कवित्त)

कभी पौड रहत हैं, कभी उठ बैठत हैं।
कभी खड़े होते, कभी यहाँ–वहाँ घूमते।।
कभी हाथ टेकि रख ठोड़ि पै विचारत हैं।
और कभी चिन्तातुर बैठे–बैठे ऊँघते।।
कभी–कभी सोचत हैं क्यों जलकेलि कर।
कर दिया अनर्थ मन में ही यों बूझते।।
और सतभामा का ध्यान जब आवत है।
क्रोधित हो बैठकर खूब दाँत पीसते।।४७ ।।

(मत्तगयन्द-मालनीसवैया)

सेज वही मृदु फूलन की,
अरु वस्त्र वही मन मोहक होवें ।
शीत नहीं अरु भीत नहीं,
गई अर्धनिशा सबही जन सोवें ।।
भूख नहीं, अरु दुःख नहीं,
दो पहर गये पर कृष्ण न सोये ।
नेमि जिनेश्वर पर अब तो,
परतीत नहीं अतएव न सोये।। ४८ ।।

।। तीसरा सर्ग समाप्त।।

चौथा सर्ग

श्री कृष्ण का चिन्तन

(हरिगीत)

सोच रहे यादव नरेश,
लेटे-लेटे निज शय्या पर।
निष्कंटक मैं हूँ नहीं आज,
विश्वास नहीं नेमीश्वर पर।।
एक बात कह देने पर,
इतना विद्रोह मचा डाला।
मेरी परसंसा सुन करके,
हो गया आज वह मतवाला।। १।।

निश्चय वह मुझसे जलता है,
मेरी विभूति को लख करके।
अतएव उदास रहा करता,
हम को खुशहाल निरख करके।।
बातों-बातों में बात यदि,
बढ़ गई बहस हम दोनों में।
तो अवश्य वह कूद पड़ेगा,
हमसे लड़ने को रण में।। २।।

उसको घमंड है निज बल पर,
मुझको कुछ नहीं समझता है ।
है तो अवश्य बलशाली वह,
पर यह कैसी बालकता है ।।
माना उसका अपमान किया था,
सतभामा पटरानी ने ।
तो मुझसे आकर कहना था,
अभिमान किया अभिमानी ने ।। ३ ।।

धोती-कुर्ता सब धोने को,
जब नौकर खड़े हजारों थे।
तब क्यों कहना पटरानी से,
पर सोचा नहीं नजारों से ।।
मानो उसने नासमझी में,
इन्कार कर दिया धोने से ।
पर रुक्मणि ने तो धो दी थी,
क्या होता था इन्कारों से ।। ४ ।।

अधचक्री की पटरानी को,
धोबिन का काम बता देना ।
उसका क्या अपमान नहीं,
यह भी था उचित सोच लेना ।।
पर 'नहीं' मात्र कह देने से,
अपने को अपमानित समझा ।
जो मन में आया कर डाला,
मुझको राजा भी नहिं समझा ।। ५ ।।

हाँ एक बात यह भी तो है,
वह तो छोटा सा बालक है।
है अनुज हमारा अति ही प्रिय,
अरु अरि-कुल का घातक है।।
आखिर तो मेरा भाई है,
उसमें मुझमें कुछ भेद नहीं।
घनश्याम वर्ण दोनों का है,
नेमीश्वर तन से श्वेत नहीं।। ६।।

यादवकुल का वह दीपक है,
अरु चरम शरीरी तीर्थंकर।
मित्रों का है वह परम मित्र,
अरु अरिगण को वह प्रलयंकर।।
यदि सतभामा पटरानी है,
वह भी राजा का भाई है।
नेमी देवर सतभामा के,
वह भी उनकी भौजाई है।। ७।।

देवर ने भाभी से हँस कर,
कह दिया यदि ना-समझी में।
मेरी धोती जब धो सकती,
अन्तर क्या था उसमें मुझमें।।
क्या मैंने अरे सोच डाला,
यह अंट-संट आवेशों में।
नेमीश्वर को अपने मन में,
मथ डाला भावावेशों में।। ८।।

अविवेकी नारी घर में आ,
गृह-कलह मचा वह देती है।
भाई-भाई में वह नारी,
नहिं प्रेम पनपने देती है।।
इनही नारी के हाथों से,
कितने ही घर बर्बाद हुए।
इनही के पीछे भारत में,
आपस में लड़ कई भ्रात मुए।। ९।।

नारीजन की नासमझी का,
जब तक नहिं अन्त यहाँ होगा।
तब तक देखा करना प्रतिदिन,
'कुरुक्षेत्र' बना हर घर होगा।।
नारी जग की निर्माता है,
उसही में शठता भरी पड़ी।
कैसे सन्तान योग्य होगी,
कलह करेगी घड़ी-घड़ी।। १०।।

इस तरह यहाँ पर कृष्णराज,
निश्चिन्त नहीं सो पाते हैं।
घँटाघर में जब तक टन-टन-
टन-टन बारह बज जाते हैं।।
इकदम सचेत होकर यदुपति,
सोचें अब सो जाना चहिये।
कर नेमिनाथ पर अविश्वास,
नहिं मन में अब डरना चहिये।। ११।।

सोने का करते हैं प्रयत्न,
पर निद्रा उनको नहिं आती।
नेत्र मूँद चादर ओढ़े,
पर फिर विचार-धारा आती।।
माना नेमीश्वर शान्त तथा,
विद्वान बड़े बलशाली हैं।
वे नहीं करेंगे युद्ध अजी,
उनकी तो प्रकृति निराली है।। १२।।

पर, राजनीति का कहना है,
विश्वास किसी पर मत करना।
चाहे सुत हो अथवा भाई,
नहिं प्रेम करो यदि नृप बनना।।
माना नेमीश्वर वैरागी,
पर राज-लोभ क्या नहिं करता।
वैराग्य - अहिंसा - प्रेमादिक,
वह लोप सभी सद्‌गुण करता।। १३।।

आ गया कभी वह राजलोभ,
नेमीश्वर के अन्तस्थल में।
तब तो मुझको लड़ना होगा,
नेमीश्वर से युद्धस्थल में।।
अतएव अखाड़े में जाकर,
कुश्ती लड़कर मैं देखूँगा।
है कितना बल नेमीश्वर में,
अपने भुजबल से तौलूँगा।। १४।।

नेमिनाथ का चिन्तन

(हरिगीत)

श्री नेमीश्वर निज महलों में,
इस ही चिन्ता में बैठे थे।
वे लेट कभी जाते थे पर,
प्रत्यंग अंग सब ऐंठे थे।।
वे सोच रहे थे भाभी ने यदि,
कुछ मजाक में कह डाला।
तो क्या मुझको था उचित यही,
इतना ऊधम जो कर डाला।। १५।।

उनने मुझको गाली ना दी,
केवल पति की प्रशंसा की।
यहाँ तक तो कुछ भी नहीं किन्तु,
मेरे बल में क्यों शंका की।।
शंका करना भी उचित अहो!
मैंने वीरत्व दिखाया क्या।
मैंने किस शत्रु को मारा,
अतएव मुझे पहचानें क्या।। १६।।

मैंने क्या अनुचित कार्य किया,
बल दिखलाया क्यों पछताऊँ ।
पर मुझको क्या अधिकार अहो,
धोती रानी से धुलवाऊँ ।।
माना मैं उसका देवर हूँ,
धोती धोना अन्याय नहीं ।
पर उसकी इच्छा के विरुद्ध,
धुलवाना कोई न्याय नहीं ।। १७ ।।

मैंने वीरत्व दिखा डाला,
बस महावीर कहलाने को ।
जन-जन में कितनी क्रान्ति हुई,
मेरी धोती धुलवाने को ।।
जनता को व्यर्थ सता करके,
मैंने वीरत्व दिखाया है ।
यह क्या अन्याय नहीं नेमी,
तू क्यों इतना भरमाया है।। १८ ।।

चिन्ता करने का काम नहीं,
जो कुछ होता अच्छा होता ।
रे व्यर्थ विचारों में फँसकर,
मैं क्यों निश्चिन्त नहीं सोता ।।
इस तरह विचारों से बचकर,
जिनवर किंचित् सो जाते हैं ।
सोने दे लेखनी जिनवर को,
सतभामा तुझे दिखाते हैं ।। १९ ।।

सतभामा का चिन्तन

(हरिगीत)

धिक्-धिक् है मेरे जीवन को,
मैंने कुछ ना सोचा भाला।
मेरे मन में जो कुछ आया,
जैसा का तैसा कह डाला।।
हा! हा! वह तो तीर्थंकर हैं,
यह मुझको याद न तब आया।
अपमान किया जगदीश्वर का,
उसका फल अब मैंने पाया।। २०।।

पति की दृष्टि से गिरी तथा,
जनता ने मुझको धिक्कारा।
देवर भी रूठ गये मुझसे,
नहिं मेरा रहा कहीं चारा।।
रुक्मणि बन कर स्नेहमयी,
उसने सबका मन मोह लिया।
मैंने हरदम निज रूप और,
पति के बल पर अभिमान किया।। २१।।

जिसका फल मैंने पाकर के,
अपना सर्वस्व गमाया है।
हे दैव! बता तू ही मुझको,
क्योंकि तेरी सब माया है।।
नारी स्नेहमयी बनकर,
अधिकार जमा सकती नर पर।
अभिमान, धौंस एवं सुरूपता,
असर नहीं करती उस पर।। २२।।

नारी चाहे तो मृदुता से,
नर से सब कुछ पा सकती है।
हँसना रोना मृदुता विहाय,
नारी में और न शक्ती है।।
पहला बल नारी का यह है,
हँसकर पति को बहला लेना।
यदि हो जावें कहिं तर्क अधिक,
तो रोकर उसे मना लेना।। २३।।

इतने पर भी जब विरोध की,
खाई बढ़ती जाती है।
विनय सहित मृदुभाषा में,
उसके दिल को बहलाती है।।
मैंने कर डाला मन-माना,
जो कुछ आया मेरे मन में।
पर जनता का अपकार हुआ,
चिन्ता व्यापी पति के मन में।। २४।।

अब पछताने से क्या होता,
पहले तो बिल्कुल नहिं सोचा।
जो बिना विचारे करता है,
उसका कुछ काम नहीं होता।।
वैसे ही तो हरदम मुझसे,
यदुराजा रूठे रहते हैं।
उस पर भी यह अपराध हुआ,
अर बायें अंग फड़कते हैं।। २५।।

इस तरह विचारती घबराती,
सतभामा सो नहिं पाती है।
रोती – अकुलाती – पछताती,
अरु लेट पलंग पर जाती है।।
लेटी–लेटी करवट बदले,
ओंधा मुख कर सो जाती है।
नेत्रों पर दोनों हाथ रखे,
हा! हा!! कह वह पछताती है।। २६।।

(दोहा)

जा जा यामिनी भाग जा, होने दे परभात।
हे! कलंकनी कलमुखी, क्यों खड़ी, नहीं शर्मात।। २७।।

।। चौथा सर्ग समाप्त।।

पाँचवाँ सर्ग

प्रातःकाल

(वीर)

पूरव में लाली छाई है।
ऊषा की बेला आई है।।
रजनी बाला का अन्त हुआ।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १।।

ऊषा दिनेश का प्रथम मिलन।
कितना सम्मोहक सम्मेलन।।
लज्जा का उसमें उदय हुआ।
अतएव तनिक शरमाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। २।।

नीचे को दृष्टि पड़ी उसकी।
साड़ी भी कुछ आगे खिसकी।।
मुस्कान रमी है ओठों पर।
लाली कपोल पर छाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। ३।।

संध्या को जिनका मिलन हुआ।
पिंजड़े में आया उड़ा सुआ।।
उन दम्पति का होगा वियोग।
नव परिणीता मुरझाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। ४।।

कोइ पति कहता सुनना प्यारी।
अपनी दुनिया जग से न्यारी।।
संध्या को सुखद मिलन होगा।
कह कर आशा बंधवाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। ५।।

व्याकुल नारी कहती पति से।
आपूरित हो जाती रति से।।
याद मुझे रखना प्रियतम।
कह कर लेती अंगड़ाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। ६।।

कोई कर कमल पकड़ करके।
अरु प्रिये-प्रिये! बस कह करके।।
तुमको प्रिय छोड़ा नहिं जाता।
यह कह उर से लिपटाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। ७।।

जाती हूँ कहे कोई कामिन।
हो नमस्कार तुमको स्वामिन।।
दिनभर को हम तुम भूल जायें।
इसमें ही नाथ भलाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। ८।।

ग्वाले गायों को दोह रहे।
मुर्गे कूँ कूँ कर मोह रहे।।
तनिक देर हो जाने से।
देखो वह गाय रंभाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। ९।।

घर-घर में चाल रही चक्की।
कोइ पीस रही गेहूँ-मक्की।।
घन-घन-घन-घन आवाजों ने।
सबकी निद्रा उचटाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। १०।।

रवि का कुछ अंस निकल आया।
दम्पति का मानो यम आया।।
विरही जन के जलवाने को।
प्राची ने आग जलाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। ११।।

फैला चौतर्फा किरण जाल।
रही पीत वस्त्र ऊषा संभाल।।
प्रातः की स्वर्णिम रश्मि ने।
रे! स्वर्णप्रभा फैलाई है।।
ऊषा की बेला आई है।। १२।।

गायें जंगल की ओर बढ़ीं।
सब देख रही गोपियाँ खड़ीं।।
वनवास समझकर गायों ने।
मानो यह धूल उड़ाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १३।।

रविकिरणों से मग आलोकित।
केशरिया वस्त्रों से शोभित।।
जा रहे भक्त जिनमन्दिर में।
भरपूर भीड़ जुड़ आई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १४।।

पूजन हो रही जिनालय में।
देवोपनीत देवालय में।।
देखो स्वर्णिम रविकिरणों ने।
यह स्वर्णाभा फैलाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १५।।

व्यापारी चले दुकानों को।
ले–ले अपने अरमानों को।।
है बजार का रुख कैसा।
आपस में बात चलाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १६।।

गोपी बजार की ओर गई।
लेकर के घृत अरु दूध दही।।
देखो वह बेच रही गोपी।
वह नाप रहा हलवाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १७।।

सब साँपड़ के[१] तैयार हुये।
खाना खाकर सन्नद्ध हुये।।
सब जन प्रसन्न हैं पर अब तक।
सतभामा नहीं नहाई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १८।।

टन–टन–टन दश घंटे बाजे।
तैयार हुये मंत्री–राजे।।
दरबार समय पर शनैः शनैः।
सब राजसभा जुड़ आई है।।
ऊषा किंचित् मुस्काई है।। १९।।

१. नहा करके

सब ही बैठे चिन्तातुर हैं।
मन में सब लोग भयातुर हैं।।
सब ही बैठे हैं मौन, किसी ने।
चर्चा नहीं चलाई है।।
सब राजसभा जुड़ आई है।। २०।।

व्याकुल तब बोले कृष्णराज।
बोलो भाई क्या किया जाय।।
क्या नहीं मुकदमा है कोई।
पेशी कोई नहिं आई है।।
सब राजसभा जुड़ आई है।। २१।।

जल्दी बोलो भई क्या करना।
यदि काम नहीं कुछ भी करना।।
तो चलो आज फिर उपवन में।
मेरे मन में यह आई है।।
सब राजसभा जुड़ आई है।। २२।।

नारी कोई नहिं जावेंगी।
रानी भी वहाँ न आवेंगी।।
वे नहीं समझती हैं कुछ भी।
हो जाती व्यर्थ लड़ाई है।।
मेरे मन में यह आई है।। २३।।

जल–केली से मन उचट गया।
खेलेंगे कोई खेल नया।।
सब दूर करेंगे चिन्ता को।
मानस में आज समाई है।।
मेरे मन में यह आई है।। २४।।

हे नेमिदेव! तुम हो उदास।
तुमरी चिन्ता से मैं उदास।।
अतएव चलो खेलें–कूदें।
रे व्यर्थ उदासी छाई है।।
मेरे मन में यह आई है।। २५।।

मुग्दर भी खूब घुमायेंगे।
बैठक अरु दण्ड लगायेंगे।।
फिर कुश्ती भी कुछ देर लड़ें।
मन में उमंग यह छाई है।।
मेरे मन में यह आई है।। २६।।

नेमी अवधी के धारक थे।
मानव विज्ञान विशारद थे।।
थे समझ गये सब कुछ प्रभुवर।
अतःएव हँसी कुछ आई है।।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। २७।।

मन में सोचा नेमीश्वर ने।
क्या सोचा है कृष्णेश्वर ने।।
अबतक न समझ पाये मुझको।
लड़कर अजमाना चाही है।।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। २८।।

यह राज्य किसी का भोग्य नहीं।
मुझको लड़ना भी योग्य नहीं।।
ये राज्य करें जब तक चाहें।
मैंने क्या करी बुराई है।।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। २९।।

पर इनको अब विश्वास नहीं।
निष्कंटक हूँ, यह आस नहीं।।
छीन न लेवे राज्य कहीं बस।
यह इनके मन में आई है।।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। ३०।।

अनुजाग्रज की कुश्ती होवे।
यह हमको शोभा नहिं देवे।।
जैसी यह बात रुची मुझको।
वैसी मैंने बतलाई है।।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। ३१।।

जब कृष्णराय ने फिर अशेष।
आग्रह कीना प्रभु से विशेष।।
चाहे जो कुछ हो नेमिराज।
पर लड़ना आज लड़ाई है।।
मन में यह आज समाई है।। ३२।।

अब जीत-हार में सार नहीं।
इसका कुछ भी आधार नहीं।।
है शान्त निराकुल ही रहना।
मैं नहीं चाहता हूँ लड़ना।।
इसमें ही भाई! भलाई है।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। ३३।।

हैं आप बड़े भाई मेरे।
यादवकुल के हैं कुलभूषण।।
सब तरह योग्य हैं आज आप।
जीवन में नहीं एक दूषण।।
यह राज आपका रहे सदा।
इसमें ही आज भलाई है।।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। ३४।।

ऐसा कहकर नेमीश्वर ने।
सन्मान सहित कृष्णेश्वर को।।
श्री सिंहासन पर बैठाया।
अर विनयभाव से समझाया।।
इसमें ही भाई भलाई है।
अरु बोले व्यर्थ लड़ाई है।। ३५।।

(हरिगीत)

यह ठीक सभी जन बोल उठे।
भाई-भाई क्यों लड़ें आज।।
पर हम सब भी तो आये हैं।
हम सबकी कुश्ती होय आज।।
सब नेमीश्वर की ओर गये।
अति आग्रह करके बोल उठे।।
मत लड़ो आप भाई-भाई।
पर हम से मत परहेज करो।। ३६।।

(दोहा)

सबका आग्रह देखकर, कहने लगे जिनेश।
यही चाहते आप सब, तो तुम सुनो विशेष।। ३७।।

(मनहरण कवित्त)

थाम पैर नेमिदेव बोले सुनो बन्धुजन।
मेरे पाद-खम्भ को उठाय आप दीजिये।।
वन माँहि जाँय और व्यर्थ मुद्गर घुमाँय।
पैर को हिलाय आप मोकुँ जीत लीजिये।।
आइये उठाइये नहीं घबराइये।
वेग से पधारिये देर मत कीजिये।।
सभी जन-जन से मेरा अनुरोध है।
मोकुँ हार चाहिये अर जीत आप लीजिये।। ३८।।

।। पाँचवाँ सर्ग समाप्त ।।

छठवाँ सर्ग

नेमि–शक्ति–परीक्षण एवं संध्या–वर्णन

(दोहा)

नेमीश्वर के पैर को, उठा सका न कोई।
उठने की क्या बात है, हिला सका न कोई।।१।।

(हरिगीत)

पैर पकड़ दोनों कर से,
भुजबल तो पूर्ण लगाया है।
उठना–बुठना तो दूर रहा,
पर तनिक हिला नहीं पाया है।।
वह तो सुमेरु सा निश्चल है,
नहिं रंचमात्र चिग पाया है।
मिलकर अनेक लोगों ने फिर,
तो पूरा बल अजमाया है।। २।।

हो गया करीब आधा घंटा,
तन में पसेव सबके आया।
शनैः शनैः सारा शरीर,
तब सराबोर भी हो आया।।
नीची गर्दन कर सभी लोग,
जब वहाँ खड़े रह जाते हैं।
अकुलाते हैं घबराते हैं,
अर बैठ जमीं पर जाते हैं।। ३।।

देख सभी की हालत यह,
कहने लगते नेमीश्वर यों।
रहने भी दो अब सुनो जरा,
नहिं डिग सकता ही है वह यों।।
रहो-रहो रहने भी दो,
अंगुली को जरा मोड़ दो तुम।
मोड़ो-मोड़ो तुम अंगुलि को,
पैरों को अरे छोड़ दो तुम।। ४।।

पैर नहीं उठ पाया पर,
अंगुलि भी नहीं मुड़ेगी क्या।
बढ़ चुकी बात जो बढ़नी थी,
ज्यादह अब और बढ़ेगी क्या।।
पकड़ तर्जनी नेमि की,
सब जन मिल जोर लगाते हैं।
पर जिनवर की अंगुलि को वे,
सब तनिक मोड़ नहीं पाते हैं।। ५।।

हो गया गजब अद्‌भुत सब कुछ,
सब एक–दूसरे को देखें।
आश्चर्य चकित हो जाते सब,
अर एक–दूसरे को देखें।।
इस घटना के घट जाने से,
अतिशीघ्र सभा अकुला जाती।
अतएव समय के पहले ही,
उसको समाप्त कर दी जाती।। ६ ।।

सभी सभासद आपस में,
यों बातें करते चलते हैं।
मंत्री–मंत्री से कहें तथा,
प्रोहित–प्रोहित से कहते हैं।।
नेमीश्वर में है इतना बल,
यह कोई नहीं समझता था।
हो गये अभी वे प्रौढ़ कहाँ,
छोटा सा बालक दिखता था।। ७ ।।

कोई कहता है अरे सुनो,
देखा प्रभाव नेमीश्वर का।
आखिर तो हैं वे तीर्थंकर,
क्या कहना है जगदीश्वर का।।
तीर्थंकर पद की महिमा का,
सबको परिचय विश्वास न था।
नेमीश्वर के अतुल्य बल का,
भी रंचमात्र आभास न था।। ८ ।।

रे शक्ति प्रदर्शन का विकल्प,
नेमी को कभी नहीं आया।
यह तो यों ही हो गया सहज,
इसमें ना उन को रस आया।।
नव बालाओं के कानों में,
यह समाचार जब आता है।
सखियों से सखि कहने लगती,
मेरे मन में यह आता है।। ९।।

'ब्याह' कहूँ क्या मैं हे सखि!
कुछ कहने में नहिं आती है।
क्या कहूँ अरी बहिना तुझसे,
नेमीश्वर मूर्ति लुभाती है।।
है धन्य जन्म उस बाला का,
नेमीश्वर जिसको परणेंगे।
उस अद्‌भुत दम्पति जोड़ी को,
कविगण भी कहँ तक वरणेंगे।। १०।।

यदि ब्याह हुआ ना नेमी से,
ब्याहा जाना भी योग्य नहीं।
बस नेमीश्वर को छोड़ अरी,
जगती तल में नर भोग्य नहीं।।
सोच सोच वनबेलिन-सी,
सारी नवेलिने होय रहीं।
नेमी-नेमी-नेमी कहकर,
अपनी सुध-बुध सब खोय रहीं।। ११।।

वृद्धायें आपस में बोलीं,
है धन्य–धन्य उस माता को।
है धन्य–धन्य हे शिवादेवि!
जाया तूने जगत्राता को।।
वही सगर्भा गर्भा है जो,
धीर वीर सुत को जाये।
कायरसू[१] नारी का अच्छा है,
गर्भपात यदि हो जाये।। १२।।

इस तरह सभी जन नगरी के,
आपस में बातें करते थे।
सबके मानस मय उपवन में,
नेमीश्वर आज विचरते थे।।
नेमीश्वर का बल लख करके,
नगरी में सन्नाटा छाया।
डर कर रवि भी जल्दी–जल्दी,
अस्ताचल में छिपने आया।। १३।।

देखो–देखो डर कर दिनेश भी,
पीठ दिखा कर भाग रहा।
हो गया लाल मुखड़ा उसका,
अब नहिं उतना कर ताप रहा।।
जनता को उसने निज कर से,
अब तक संताप दिया भारी।
पर जगन्नाथ नेमीश्वर को,
लख अब उसने हिम्मत हारी।। १४।।

---

१. कायर को जनने वाली

दुष्टों की प्रायः प्रकृति यही,
निबलों से सदा अकड़ते हैं।
बलवानों के सम्मुख उनको,
भी पैर पकड़ने पड़ते हैं।।
रवि भी हमसे क्रोधित होकर,
क्रोधानल में तप आया था।
पड़ गया किन्तु ठंडा अब तो,
कितना ऊपर चढ़ आया था।। १५।।

देखो! देखो!! निज राज छोड़,
छुप रहा पर्वतों के अन्दर।
मानो केहरि दल लख करके,
दौड़ा हो रक्तमुखी बन्दर।।
सुमनों की वर्षा हेतु अरे!
नभमंडल थाल सजा लाया।
जग-मग जग-मग तारा चमकें,
मानो शशि स्वागतार्थ आया।। १६।।

कोइ झाँक रही है खिड़की से,
इंगित करती गोपालों को।
कोई घट लेकर जाती थी,
पर देख रही गोपालों को।।
ग्वाले गायों के पीछे हैं,
जा रहे झुण्ड दरवाजों में।
उड़ रही धूल मानों दुकूल[1]
छा रही भीड़ दरवाजों में।। १७।।

१. दुपट्टा

नीला नीला नभ साड़ी है,
तारों से झिलमिल चमक रही।
झिलमिल झिलमिल झिलमिल झिलमिल,
झिलमिल बिजली सी दमक रही।।
विजय देख नेमीश्वर की,
जन–जन में छाई हरषाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। १८।।

है कमलनयन अरु चंद्रमुखी,
यामिनि की सखी सहेली है।
उन्नत कुच लम्बे कच वाली,
संध्या यह नई नवेली है।।
लख करके श्री नेमीश्वर को,
देखो यह किंचित् शरमाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। १९।।

जो दिनभर से हैं कार्य व्यस्त,
उनको विराम देने वाली।
जिनके पति हैं आने वाले,
उनको प्रसन्न करने वाली।।
पर जो वियोगनी बालायें,
उनको यह सदा दुःखदाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २०।।

गायें ग्वाले गाते-गाते,
ग्रामों की ओर चले आते।
निज माताओं से मिलने को,
बछड़ी बछड़े हैं रम्भाते।।
अपने पति को हँसते विलोक,
देखो वह गोपी मुस्काई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २१।।

कोइ ग्वाले गायें दोह रहे,
कोइ गा-गा कर मन मोह रहे।
कोइ बालक रूठे रोय रहे,
कोइ निद्रा के वश सोय रहे।।
देखो यह प्रकृति-वधूटी[1] ने,
कितनी सजधज है करवाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २२।।

पक्षी भी रैन बसेरा को,
जा रहे ओर द्रुम-डरियों[2] की।
जो बिछुड़े थे सुबह उन्हें,
आशा थी प्रायः मिलने की।।
अपने प्रिय प्रीतम को विलोक,
देखो वह चिड़िया उड़ आई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २३।।

---

१. प्रकृतिरूपी वधू २. वृक्ष की डालियाँ

संध्या के समय बजारों की,
शोभा अद्भुत हो जाती है।
अरु चमक–दमक से रत्नों की,
रे चकाचौंध मच जाती है।।
मणिजड़ित सुवर्णाभूषण से,
जौहरी मंडी है सजवाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २४।।

सब ही दिन–भर का क्रय–विक्रय,
रोकड़ खाते में देख रहे।
रोकड़ पाना, खाता पाना,
आना–जाना सब लेख रहे।।
कोई उदास मुख कहता है,
रोकड़ नहिं मिलती है भाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २५।।

संध्या–वन्दन के हेतु कई,
जा रहे मनुज देवालय में।
हो रही कहीं पर शास्त्र–सभा,
उपदेश आदि देवालय में।।
कोई गाता है भजन तथा,
चौतर्फा खुशियाँ हैं छाई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २६।।

कोई व्याकुल होकर प्रेमी,
कहता देखो निज नारी से।
आओ-आओ हे प्रिये आज,
व्याकुल हूँ याद तुम्हारी से।।
नारी भय से धीरे कहती,
आई - आई - आई - आई।
नेमीश्वर का स्वागत करने,
संध्या सुहागिनी सज आई।। २७।।

(दोहा)

वरमाला ले क्यों खड़ी, री संध्या! तू बोल।
तारा सुमनों से लसी, यह माला अनमोल।।२८।।

किसको तू पहनायगी, बोल! बोल!! री! बोल!!
नेमीश्वर तो ये खड़े, घूँघट के पट खोल।।२९।।

(मनहरण छन्द)

डाकिनी पिशाचनी औ भूतनी औ प्रेतनी -सी।
एरी नागिन तू दिनकर निगल गई।।
यामिनि सहोदरि अरु सूरत भयावनी।
सारी नगरी तोय देखकर विकल भई।।
नेमिनाथ ब्याह क्या करेंगे कुट्टनी[१] के साथ।
ऐसा जान देखो वह सांझ शरमाय गई।।
नेमि को प्रताप रूप रंग को विलोक कर।
सन्त को विलोक मानो ममता विलाय गई।। ३०।।

१. कुरूप एवं कुटिल स्त्री

(हरिगीत)

हे संध्ये! तुम जाव जल्द,
मिलने दो नवदम्पति जन को।
बातें करने दो उन्हें रसिक,
मिलने दो उनके तन–मन को।।
मिलने दो उनके तन–मन को,
नवबाला से जीवनधन को।
जीवनधन से नवबाला को,
सबके संयोगी जीवन को।। ३१ ।।

(दोहा)

अरी–अरी तू भेज दे, अनुजा यामिनी को।
सब रंग जावे रंग में, ऐसी कामिनी को।।३२ ।।

।। छठवाँ सर्ग समाप्त ।।

सातवाँ सर्ग

रात्रि

(मानव छन्द[१])

हे कलंकनी यामिनि,
तूने यह जाल बिछाया।
पाकर सहायता रति की,
प्रेमानल यहाँ जलाया।।
तेरा पति चन्द्र कलंकी,
उसने अमृत के छल से।
मादक मदिरा बरसाई,
छाई मादकता कल से।। १।।

अँधियारा छाया नभ में,
सुनसान मची वसुधा पर।
विकराल कराल धरा पर,
आया भी नहीं सुधाकर।।
सभी मनुज प्रायः कर,
निद्रावस्था में सोते।
या अनंग के बस में,
प्रायः कामी जन होते।। २।।

---

१. तर्ज – ऐ मेरे वतन के लोगो

कामिनिजन को निज वशकर,
है उनको खूब सजाता।
मानो शंकर से डरकर,
है मदन किला बनवाता।।
कामिनि का कलित किला वह,
कितना सम्मोहक होता।
उन्नत स्तन हैं बुर्ज अहो,
दुर्गों-सा शोभित होता।। ३।।

डरकर अनंग शंकर से,
फिरता है मारा-मारा।
दिन को वह नहीं निकलता,
चिन्तातुर रहे विचारा।।
इक तो यह निशा अंधेरी,
फिर नारी का वक्षस्थल।
कुञ्जर-सी चाल परख कर,
पाकर कोमल कण्ठस्थल।। ४।।

और निशा में आया,
वह भी तो अरे अँधेरी।
छुप करके कहो नहीं तो,
क्यों करता वह जग फेरी।।
नारी का रूप बनाकर,
आया पहचान न लेवे।
नर भेष छोड़ वह आया,
शंकर कहिं जान न लेवे।। ५।।

नारी स्तन मण्डल का,
वह सुधामयी रस पीकर।
हुआ भस्म जो मदन, वही,
आया है दुबारा जीकर।।
नारी जन को अपनाकर,
नर पर प्रहार करता है।
हाव भाव दिखलाकर,
उनके मन को हरता है।। ६।।

बीते दो पहर निशा के,
वह चन्द्र निकलता आता।
आधा रह गया कहाँ वह,
आधा भगता ही आता।।
रम्भा यामिनि से मिलने,
वह शीघ्र भागता आता।
व्याकुल होता घबराता,
अरु रक्तमुखी हो जाता।। ७।।

यामिनि निशेश को लखकर,
भावनि–सी मुस्का देती।
मुख की म्लानता धोकर,
किरणों को लिपटा लेती।।
अभिसारण को पहना था,
जो काला वस्त्र निशा ने।
उसको उघाड़ने लगा शशि,
अब शुभ्र वस्त्र पहनाने।। ८।।

शशि अपने कर फैलाकर,
आलिंगन करे निशा का।
अपनी किरणों के बल से,
तन उज्ज्वल करे निशा का।।
कहे निशा हे स्वामी!
अब तक हे नाथ! कहाँ थे।
क्या कहूँ अरे महारानी!
बन्धन में प्रिये वहाँ थे।। ९।।

वहाँ कुमुदनी लखकर,
चंदा से बोली आओ।
खिल गई कली है मेरी,
प्रीतम आओ प्रिय आओ।।
शशि भी जा पहुँचा जल्दी,
रानी के समुद्र भवन में।
जिनके कारण वह अबतक,
डोला था प्रायः वन में।। १०।।

निश्चिन्त सो रहे नर सब,
जग रहे वृद्ध हैं किंचित्।
सब ही अबाध सोते हैं,
कोई नहिं सुख से वंचित।।
नारी-नर व्याकुल होते,
किसने है उन्हें सताया।
पाकर अनंग ने यामिनि,
अपना आतंक मचाया।। ११।।

कोई नर अपने कर से,
कामिनि केशों को खोले।
उनको मुख पर छिटका कर,
धीरे-धीरे यों बोले।।
काले-काले ये कच प्रिय!
मेघों सी शोभा देते।
मध्यस्थ तुम्हारा मुख यह,
रे! चन्द्रप्रभा हर लेते।। १२।।

रे! नेत्र पद्म से शोभें,
मानों मुख पद्माकर है।
रत्नाभूषण कानों में,
क्या मुख ही रत्नाकर है।।
कर में कामिनि कर लेकर,
कितना कोमल यह कर है।
कर कमल नहीं कह सकता,
यहाँ पर नहिं पद्माकर है।। १३।।

अरे-अरे हे नाथ! व्यर्थ ही,
कर क्यों मोड़े देते।
अच्छा-अच्छा बस कहकर,
क्यों उसको तोड़े देते।।
कोई जाकर के छत पर,
हैं चन्द्रप्रभा में बैठे।
बह रहा विनोदामृत है,
पीते हैं बैठे-बैठे।। १४।।

कोई कामिनि कहती है,
अब मुझको सो जाने दो।
बातें अब बन्द करो प्रिय,
कुछ निद्रा तो आने दो।।
अच्छा-अच्छा सो जावो,
मैं भी तो सो जाता हूँ।
सोना तो चाहूँ रानी,
पर सोने नहिं पाता हूँ।। १५।।

सुनो-सुनो बस एक बात,
कह कर ही मैं सो जाऊँ।
उस दिन का दिया इनाम,
कहो किस दिन मैं पाऊँ।।
चोरी जारी को अरी निशा,
तूने ही तो करवाया।
पाकर अनंग ने यामिनि,
अपना आतंक मचाया।। १६।।

जहँ देखो तहँ स्मर का,
निष्कटंक राज्य समाया।
साम्राज्य अचल है उसका,
जगतीतल को भरमाया।।
पर कृष्णराज चिन्ता में,
डूबे बैठे महलों में।
कितने ही युद्ध लड़े हैं,
पर हारा नहिं अब लौं मैं।। १७।।

चिन्तावस्था में बैठे,
इकदम विचार यह आया।
इतना झगड़ा हो गया किन्तु,
वह किंचित् नहिं अकुलाया।।
गुस्सा बिलकुल नहिं आया,
अरु किंचित् नहिं हरषाया।
देख विजय वह अपनी,
थोड़ा भी नहिं मुस्काया।। १८।।

महावीर होने पर,
भी लड़ने से सकुचाया।
मुझे जानकर अग्रज,
केवल प्रण मात्र निभाया।।
और जीत जाने का,
उसको घमण्ड नहिं आया।
सादर मुझको ही आखिर,
सिंहासन पर बैठाया।। १९।।

अपमान हुआ है मेरा,
उसने तो नहीं किया है।
उसने तो प्रायः अब तक,
मुझको सन्मान दिया है।।
अहो! जीत जाने पर,
भी राज-लोभ नहिं आया।
सादर मुझको ही आखिर,
सिंहासन पर बैठाया।। २०।।

उसका अपराध नहीं है,
क्यों गुस्सा उस पर आया।
पहले तो कुछ नहिं सोचा,
अब क्यों पीछे पछताया।।
मैंने ही आग्रह करके,
लड़ने को उसे बुलाया।
आखिर मुझको ही सादर,
सिंहासन पर बैठाया।। २१।।

यह ठीक किन्तु भाई की,
उन्नती देखकर जलना।
उन्नत लखकर अपने से,
अपना अपमान समझना।।
लड़ना है व्यर्थ लड़ाई,
कहकर मुझको समझाया।
आखिर मुझको ही सादर,
सिंहासन पर बैठाया।। २२।।

फिर भी अग्रज कहलाना,
है उचित नहीं अग्रज को।
अवनती चाहना उसकी,
है उचित नहीं अग्रज को।।
होना बलवान अनुज का,
यह है सौभाग्य हमारा।
है एक वंश हम सबका,
कुछ नहीं हमारा न्यारा।। २३।।

बलदेव हमारे अग्रज,
मैं हूँ उनसे बलशाली।
मैं हूँ यदि राजा तो वे,
भूपाग्रज प्रतिभाशाली।।
उनने यह कभी न सोचा,
मैं सेवक हुआ अनुज का।
मेरे मन में क्यों आया,
बल खटका मुझे अनुज का।। २४।।

रामानुज[१] राम नृपति से,
थे धीर-वीर बलशाली।
मैं ही तो नहीं अकेला,
हूँ थोड़ा शक्तिशाली।।
यह बात ठीक है किन्तु,
अपमान याद जब आता।
है हृदय धधकता मेरा,
मानस जलने लग जाता।। २५।।

है खून खौलने लगता,
सीना फटने लग जाता।
पागल सा मैं हो जाता,
अपमान याद जब आता।।
रे कृष्ण! सोचता क्या है,
इकदम मन में आता है।
यह नहीं अनोखी घटना,
प्रायः होता आता है।। २६।।

---

१. राम के लघुभ्राता लक्ष्मण

तू तो नारायण केवल,
है तीन खण्ड का स्वामी।
था भरत चक्र का धारी,
वह छह खण्डों में नामी।।
बत्तीस सहस महराजे,
जिसकी सेवा में रहते।
था आदिनाथ का सुत वह,
सुर सेवा जिसकी करते।। २७।।

उसका बाहूबलि द्वारा,
अपमान हुआ जगती में।
है व्यर्थ अरे पछताना,
मैं क्या उनकी गिनती में।।
बाहूबलि ने अग्रज का,
अपमान किया था किन्तु।
अपमान देख अग्रज का,
वे सह न सके थे परन्तु।। २८।।

अपमान हुआ अग्रज का,
इस महापाप के डर से।
वे राज छोड़ निस्पृह हो,
चले गये थे घर से।।
बाहूबलि सा ही नेमी,
प्रायः निस्पृह योगी है।
लोभादिक रोगों का वह,
नहिं किंचित् भी रोगी है।। २९।।

शारीरिक बल होने से,
वह नहीं बड़ा हो सकता।
प्रतिभा में मेरे सम्मुख,
वह खड़ा नहीं हो सकता।।
ताकत होती घोड़े में,
पर बड़ा नहीं वह जग में।
जो राजनीति पहचाने,
वह ही नृप बनता जग में।। ३०।।

यदि हार गया तन बल से,
प्रतिभा बल से जीतूँगा।
मैं झाड़ फूँक काँटों को,
निष्कंटक राज करूँगा।।
पर भेद राजनीति का,
कोई भी जान न पाये।
वह चाल खेलनी होगी,
कोई पहचान न पाये।। ३१।।

हाँ हाँ बस सुलझ गया मैं,
बस यही करूँगा प्रातः।
लख कर अवश्य यह हिंसा,
होगा वैरागी भ्राता।।
अब तो मैं किंचित् सुख से,
चिन्ता-विहीन सो जाऊँ।
समझो अब सुलझ गया मैं,
अब निष्कंटक हो जाऊँ।। ३२।।

अरु उग्रसेन से मिलने,
प्रातः जूनागढ़ जाऊँ।
जाना ही होगा अच्छा,
क्यों उनको व्यर्थ बुलाऊँ।।
मेरे प्रस्ताव को पाकर,
वे अति आनन्दित होंगे।
पुरजन परिजन यह सुनकर,
सब ही आनन्दित होंगे।। ३३।।

(दोहा)

सोते-सोते सोचते, ही वे रहे महन्त।
अरे रात्रि के अन्त में, कुछ सोये श्रीकृष्ण।। ३४।।

(मनहरण कवित्त)

इह भाँति सोच दुख मोचकर यदुराज।
चिन्ता को जलाय निश्चिन्त सोय जाते हैं।।
अतिशीघ्र उठ धाय नेमिनाथ को बुलाय।
हँसकर धीरे-धीरे बात यों बनाते हैं।।
यदुकुल भूषण विलोक तुम्हें धीर-वीर।
मारे स्वाभिमान के हृदय खिल जाते हैं।।
विलोक तेरी वीरता देखकर सुधीरता।
नेमिनाथ आपका विवाह रचवाते हैं।। ३५।।

थोड़े–थोड़े शरमाय थोड़े–थोड़े हरषाय।
थोड़े मुस्काय नेमिनाथ नहिं बोलते।।
और मुख किये नीचे ओंठ दाँत से दबोचे।
गहे रहे मौन ओंठ किंचित् न खोलते।।
खड़े रहे वहीं नहिं आगे पीछे गये कहीं।
निश्चल खड़े हैं नेमि किंचित् न डोलते।।
खड़े तो हैं सज्जित पर हो गये हैं लज्जित।
जावो! जावो!! अनुज यों कृष्णराय बोलते।। ३६।।

(दोहा)

सम्मति लेकर अनुज की, चले कृष्ण यदुराज।
मँगवा कर के रथ तुरत, उग्रसेन के राज।। ३७।।

(मत्तगयन्द सवैया)

या रथ को कुछ शोभ विलोक,
चलें जूनागढ़ को निरखेंगे।
बैठ इसी रथ में प्रिय लेखनि,
यादव ईश्वर संग चलेंगे।।
साज नहीं सिंगार नहीं,
जूनागढ़ में हम भी विचरेंगे।
और नहीं कुछ भी मन में,
हम राजुल का मुख–कंज लखेंगे।। ३८।।

(हरिगीत)

क्यों रथ में ही बैठी है,
चल चल आगे ही दौड़ चलें।
हम तो सेवक प्रभुजी के हैं,
आओ पैदल ही चले चलें।।
ससुराल जा रहे स्वामी की,
क्यों नहिं प्रसन्न मुद्रा होवें।
अपनी स्वामिन को निरखेंगे,
बैठे-बैठे यहाँ क्यों रोवें।। ३९।।

कहते आये ससुरालों में,
सुख का आवास सदा रहता।
साले साली घेरे रहते,
प्रायः सुख का स्रोता बहता।।
फिर मेरे आराध्यदेव,
नेमीश्वर की ससुरालों में।
देखूँगी उनकी पत्नी को,
खेलूँगी साली सालों में।। ४०।।

(मानव)

चलो चलो हे पाठक, चलते हैं जूनागढ़ में।
कविराजा की हूँ दासी, पर नहीं मन्थरा हूँ मैं।।४१।।

।। सातवाँ सर्ग समाप्त।।

आठवाँ सर्ग

जूनागढ़

(मनहरण कवित्त घनाक्षरी)

मदिरा सा मादक सभी को सुखदायक है।
विधि का बनाया मानों यही सुरपुर है।।
किधों के नागपुर है किधों के नाकपुर है।
नहिं नहिं यह तो जूनागढ़ नगर है।।
सुधान्य घर-घर में समान्न घर-घर में।
अन्न से विहीन बाल हीन नहिं घर है।।
ताकी शोभ देखवे कों नगर विलोकवे कों।
आवे नर-नारि ऐसो जूनागढ़ नगर है।। १।।

कहिं कहिं उपवन कहिं कहिं सु भवन।
कहिं पर केलिकुञ्ज रम्य सरसात हैं।।
कहिं पर झर रहे झरना झरर रारा।
चेत[1] माहि होय रही मानो बरसात है।।
दाननि को देवे के सिवाय कछु काम नहिं।
'लीजे लीजे' छोड़ नहिं और कछु बात है।।
जूनागढ़ ने रीति का अन रीति का प्रचार कियो।
लेनेवाला रोवे देनेवाला हरषात है।। २।।

---

१. चैत्र मास

सदन–सदन सरिता के सम शोभित हैं।
कमल–वदन कामनीनि के निवास तें।।
ऐसो भ्रम पथिक कों बार–बार होय जाय।
चारु चन्द्रकान्त–मणि–मण्डित मकान तें।।
अमल कमल जलधारा की समानता।
और भी समानता है चांचल्य–विधान तें।।
सरिता के अंक माहि एक शशि वास करे।
सरिता को जीतो है अनेक मुखचन्द्र तें।। ३।।

उन्नत बजार हैं पै जार नहिं कहिं पर।
मनचोर बहु हैं पै धनचोर नहिं हैं।।
कामचोर नहिं हैं वा दामचोर नहिं हैं।
किन्तु पर पीर–चोर वैद्य कहिं कहिं हैं।।
सब ही निकाम हैं पै काम खूब करत हैं।
तहाँ पर कोई भी हरामखोर नहिं हैं।।
बालजन तहँ पर घर–घर खेलत हैं।
बालकता किन्तु तहाँ कहिं पर नहिं है।। ४।।

वैसे तो कुँ शीलधारी और करवालधारी।
जूनागढ़ नगर में नारियाँ मिलत हैं।।
अपने कुँ शील की प्रथम पताका जान।
गर्वधारी तहँ पै कुमारियाँ मिलत हैं।।
तहँ के वणिक पड़े रहें वेश्यालयन[१] में।
पर भरतार घर नारियाँ बसत हैं।।
बाल रहे नम कान वह आवें दुकान।
बालिका कपोल छू कें क्रीड़ा करत हैं।। ५।।

१. वैश्य+आलय = दुकान एवं वेश्या+आलय = वेश्या का घर

सुधा नहिं वसुधा में आय गई जूनागढ़।
सुधाधरी वसुधा ये व्यर्थ ही कहात है।।
रत्न कहाँ सागर में तुम हू बताओ कछु।
'रत्नाकर' नाम से वह नहिं शर्मात है।।
याकी शोभा देख कें औ नगर विलोक कें।
कला कौ रूप देख कें विधि भी लजात है।।
जूनागढ़ मधु सा ही मीठा ओ अनूठो है।
अहहः देखो वह कैसो सरसात है।। ६।।

मारवे के नाते नर पाप को ही मारत हैं।
बाँधवे के नाते चोटी बाँधती हैं नारियाँ।।
हारवे के नाते कण्ठ माँहि मणि हार डालें।
पहने फिरें स्वर्ण हार तहँ सुकुमारियाँ।।
डरने के नाते बस पाप ही से डरत हैं।
सीचवे के नाते बस सींची जाती क्यारियाँ।।
नाहीं करवे के नाते दानी तो करत नाहीं।
होली खेलने में नहिं नहिं कहें नारियाँ।। ७।।

क्रमशः कतार माँहि सुन्दर भवन बने।
तथा जिन-मन्दिर अनेक विद्यमान हैं।।
जिन माँहि जिनबिम्ब अनेक हैं विराजमान।
अहहहः सिद्धबिम्ब सिद्ध के समान हैं।।
और अरिहन्त अरिहन्त के समान शोभें।
सामने खड़े हैं भक्त ले कें अरमान हैं।।
वेदिका है अनुपम बिम्ब की तो कहें क्या।
देखो! निर्ग्रन्थ अरिहन्त भगवान हैं।। ८।।

अरिहन्त निर्ग्रन्थ हैं पै ग्रन्थन के ज्ञानवान।
भासनहारे ग्रन्थन के वे ही भगवन्त हैं।।
बड़े ही अहिंसक हैं कर्मों को मार डाला।
कहत अजातरिपु पर अरिहन्त हैं।।
मुक्ति नारि परणी है बाल ब्रह्मचारी पर।
नग्नकाय हैं परन्तु बड़े ही श्रीमन्त हैं।।
सोचो तो विचारो और मानस में धारो तो।
ब्याह नाहीं भयो पै सब ही के कन्त हैं।। ९।।

कहूँ सर सरसी हैं वापिका तड़ाग कहूँ।
तिन माँहि पंकज सुपंकज लसत हैं।।
कहूँ नृत्यशाला माँहि नृत्य गीत होय रहे।
तथा कहूँ तबला औ ढोलक बजत हैं।।
वैधव्य दरिद्रता का नाम मिले ग्रन्थन में।
इनके विलोकबे को नर तरसत हैं।।
खुद को महेश कहें भीख माँगी शंकर ने।
सुनकर बात यह बालक हँसत हैं।। १०।।

लेवो कोऊ सीखो नाहिं देवो देवो जानत हैं।
जहाँ तहाँ अन्नदान वस्त्रदान देखिये।।
शास्त्रदान ज्ञानदान औषध अभयदान।
पानदान पीकदान जहाँ तहाँ पेखिये।।
तथा सन्मान दान और फल फूल दान।
एवं आहार दान साधुन विसेखिये।।
और पाठशाला माहिं छात्रन के मुख माँहि।
अपादान सम्प्रदान दान–दान लेखिये।। ११।।

कानन अनेक पै दुकान तहाँ शोभित हैं।
तहाँ ए कमल भरे अहः सरवर हैं।।
आनन्द चहुँ ओर पै नन्दें नहिं एक भी।
ब्याही हुई नन्दें भरतार घर पर हैं।।
तहाँ पै सुनार औ सुनारियाँ अनेक हैं।
शिव के समान नील–कण्ठ तहँ पर हैं।।
शंकर समान ही तो तहँ के मनक[१] हैं।
शिव से विषादी पर वहाँ नहीं नर हैं ।। १२।।

वैसे तो हैं सब नर सिंह से प्रतापवान।
केहरि सी क्रूरता पै उनमें न पाइये।।
वैसे तो मृगाक्षी हैं सभी सुकुमारियाँ।
किन्तु मृगतृष्णा का लेश भी न पाइये।।
चन्द्रमुखी वैसे तो अनेक नव नारियाँ हैं।
चन्द्रमा सी कालिमा पै उनमें न पाइये।।
कृष्ण के समान प्रायः सब नर नारी हैं।
कृष्ण से प्रपंची तहाँ नहिं आजमाइये।। १३।।

सब ही चतुर हैं पै आतुर नहिं है कोई।
चिन्तातुर भयातुर ढूँढे न मिलत हैं।।
सब ही नभोगन से सब हीन भोगन से।
अति ही वियोगी तहँ दुःख तरसत हैं।।
वैद्य बैठे रहत हैं ग्राहक मिलत नाहिं।
और बोतलों में पड़ी औषधि सरत हैं।।
कोऊ निर्लज्ज नहिं कोऊ भी उज्जड्ड नहीं।
सब ही विवेकी और सब सरमत हैं ।। १४।।

१. पुरुष/नर

सब ही विवर्ण हैं पै वर्णशंकर नाम नहिं।
गायें भैंसें बँध रहीं तहँ घर–घर में।।
विवेकता सुशीलता और मदहीनता।
धर्म अनुरागता मिलेगी नर–नर में।।
होवें नहिं अतिवृष्टि और अनावृष्टि वहाँ।
लगा ध्यान सब ही का बस जिनवर में।।
शूरवीर दानवीर कर्मवीर धर्मवीर।
उग्रसेन राज करें जूनागढ़ नगर में।। १५।।

शौर्यवान धैर्यवान और बल वीर्यवान।
स्वाभिमान धारक वे सूर्य के समान हैं।।
पापों के विनाशक औ शत्रुओं के नाशक वे।
जूनागढ़ नायक रे बड़े भाग्यवान हैं।।
भूमिपति हैं परन्तु नृपति कहावत हैं।
राजमद नहीं है पै प्रतिभावान हैं।।
ताकी महारानी जयावती पटरानी।
वह गुणवती आप भी तो गुणवान हैं।। १६।।

उग्रसेन राय की है राजमति कन्यका।
कैंधो नाग–सुता कैधों नाक–सुता नई है।।
शचि रति है अथवा राजमति कन्यका है।
शंकर विहाय यहाँ उमा आय गई है।।
याकी नख–चन्द्रिका को देख शशि–चन्द्रिका।
चिन्तातुर होय देखो म्लान–मुख भई है।।
शंका धारी मन में औ डोली वन–वन में।
निज अपमान देख क्षीण होय गई है।। १७।।

याकी चाल देख पादपद्म को विलोक हंस।
थलवास छोड़ जलवास वह करत है।।
याकी मन मस्त मदमत्त गजचाल देख।
डर कर याको गज पीठ पै धरत है।।
पादपद्म पादप सुकेर[१] के समान शुभ।
और निर्लोम जानु रम्य सरसत हैं।।
कंचन वरण मानो कंचन के खंभ दोनों।
याकी शोभ देख के सुनार सरमत है।। १८।।

देख के नितम्ब अति थूल वीर के समान।
मानो कामदेव ही ने सुगुरु बनाये हैं।।
ताको शिष्य बन जो सीखो है मदन ने।
हरि–हर–विधि सब ही तो भरमाये हैं।।
ताकी कृष कटि माँहि कनकति सोहत है।
अर्जुन की बेल ने ही चक्कर लगाये हैं।।
हाय राम! बे–कसूर कटि को क्यों बाँधा गया।
सिर्फ अपराधियों को बन्धन बनाये हैं।। १९।।

बड़ी अपराधनी है लचक–लचक कर।
मटक–मटक मन मानस को चोरती।।
दिखवे में छोटी और बाँधत कछोटी है।
बड़े बड़े योगियों का योग ज्ञान तोरती।।
जाकी दृष्टि पड़त है सो ही मन मस्त होय।
ताके मन माँहि यह सुधारस घोरती।।
कैसी अनरीति को प्रचार कियो कटि ने।
व्याकुल होवें और, जब निज को मरोरती।। २०।।

१. केले के पेड़

ऐसी अपराधिन को दण्ड यही चाहिये।
यातें पैले बाँधो गयो याको शुभ्र चीर से।।
नारा के बहाने बाँध दयो फिर डोरी से।
ताके ऊपर बाँधा गया रजत पनीर से।।
नीचे से नितम्ब रूप वीरों का लगाया पैरा।
ऊपर राखे स्तन बड़े ही बलवीर से।।
तब भी कमर यह अमर बनी ही रही।
समर करत बड़े-बड़े रण धीर से।।२१।।

युद्ध माहि लड़ लड़ कृष अति होय गई।
डर लागो ताको कहिं टूट नहिं जाऊँ मैं।।
बड़े-बड़े वीरन को हरायो मैंने युद्ध माँहि।
पाय निज कृषता हार नहिं जाऊँ मैं।।
मानो ये ही डर से है बाँध लीनी कसकर।
मैं तो नहिं डरूँ औरों को ही डरवाऊँ मैं।।
कस के कमर सन्नद्ध होय आय गई।
बोली आओ वीरो युद्ध माँहि दिखलाऊँ मैं।।२२।।

ताके ऊपर पेट माँहि त्रिवलि विराजत है।
शिव के हरायवे कों यही तिरसूल है।।
गहरी-गहरी नाभि कों घेरे हुये रोमावलि।
विष्णु के हरायवे कों यही चक्रमूल है।।
कैधों तिरसूल है कैधों चक्रमूल है या।
अलि के लुभायवें को कमल को फूल है।।
नहीं तो बताओ काहे रोमावलि रूप में।
अलिदल चारों ओर उड़े फूल फूल हैं।।२३।।

उन्नत सुधामयी कनक कलश शोभे।
ताके ऊपर नीलमणि शोभत सुहावने।।
सभी बाल बालक ओ सब जगपालक ये।
सुधा के निधान कुम्भ सबके मन भावने।।
तो भी मूढ़ कामीजन देख हंसे निज मन।
मन में विचार लावें विषम भयावने।।
अहः जग–जननी के अमृत के कुम्भ यह।
तिनके बखानवे को उपमा ही का बने।। २४।।

कमल की नाल के समान हैं सुवृत्त भुजा।
कराग्रभाग माँहि कर–कमल लसत हैं।।
एक–एक पद्म माँहि पँच पँच पाँखुरी हैं।
हथेलियों की रक्त प्रभा अति विलसत हैं।।
ताके अग्रभाग माँहि खून से नाखून शोभे।
अहः बालरवि के समान सरसत हैं।।
तथा हैं अलंकृत विभिन्न अलंकारों से।
और का कहूँ मैं बस पद्म विकसत हैं।। २५।।

ताकी मीठी वाणी सुन पिक सरमाय गई।
नहिं तो बताओ क्यों कारो रूप धारो है।।
नगर का वास छोड़ वन–वन डोलत है।
सोचे मन माँहि विधि सबसे ही न्यारो है।।
इतने पै कण्ठ माँहि हार पहना राजुल ने।
जगमग ज्योति कर अंधकार मारो है।।
ऐसे ताके कण्ठ को बखानो किस भाँति में।
यातें ताकी छवि को मन में ही धारो है।। २६।।

ताकी दन्तपंक्ति ऐसी मानों द्विजपंक्ति[१] बैठी।
बैठी बैठी द्विजपँक्ति[२] वेदों को बखानती।।
प्रभा तामें पय सी औ चन्द सी चमक जामें।
बोल बोल लेखनी तू इन्हें पहचानती।।
तारों की यह शुभ्रपंक्ति मारे अभिमान के।
नभ माहिं चड़ी जाती कुछ नहिं मानती।।
तातैं ताको पकड़ कै बत्ती सों जकड़ कैं।
कैद माँहि डाल दिये यही बस जानती।।२७।।

और इन कपोलों की कपोल कल्पना न करो।
वैसे ही कपोल हैं ये कल्पना क्या कीजिये।।
किन्तु नहिं आवे मेरी समझ में नाथ यह।
बस एक बात मेरी आप सुन लीजिये।।
पावन पुनीत और पुन्य के उदय भानु।
काहे से बनाये गये यह कह दीजिये।।
अरे मौन तोड़ो कवि कहो यह कैसे फवि।
पाहन बने क्यों बैठे किंचित् पसीजिये।।२८।।

कहा कहूँ सहचरि कहत बनत नहिं।
चन्द्रमा से कहूँ तो कलंक कहाँ पाइये।।
दिव्यता कों देख यदि रवि का विचार करूँ।
सूर्य संताप कहाँ जरा आजमाइये।।
केवड़ा गुलाब और केतकी के पुष्प माँहि।
ऐसे परमाणु यदि होवें तो बताइये।।
कमल समान कह देवे पै सन्तोष नहिं।
कैसे बतलाऊँ मैं आप ही बताइये।।२९।।

१. बगुलों की पंक्ति। २. ब्राह्मण पण्डितों की पंक्ति।

सुक के मुखाग्र के समान है सुनासिका।
अधरों के ऊपर अधर पौड़ आई है।।
तातें वे त्रस्त भये मन माँही क्रुद्ध भये।
अतएव उन पर लाली आज छाई है।।
अधरों को क्रुद्ध देख नासिका प्रबुद्ध देख।
हुईहै अब युद्ध जान जीभ घबड़ाई है।।
नहीं तो बताओ क्यों दाँत राखे पहरे पै।
आप काहे मुख गढ़ माहिं घुस आई है।। ३०।।

मृगी तेरे नेत्र देख चिन्तातुर होय गई।
अन्यथा बताओ वह अति कृष क्यों भई।।
मृग–नैनी तुमको कहूँ मैं किस भाँति कहो।
मृगी की सुनेत्रता आज सब खोय गई।।
श्वेतता के बीच माँहि श्यामता है आय बैठी।
ताके बीच माँहि अहः प्रभा नीलमणि मई।।
ताके ऊपर पलक में पलक पलक मारत।
चित्रमई देख जग चित्रमई होय गई।। ३१।।

अहहः भोहें कमान तान आय गई।
दोनों करवालवत् शोभत मनोहरी।।
कैधों करवाल कैंधो धनुवाण यह हैं।
मनुजों के मन को मोहत मनोहरी।।
एवं ललाट माँहि भोहों के बहाने तें।
मानों ओम् लिखी गई सुन्दर सुधा धरी।।
सुन्दर ललाट पट्ट लम्बा चौड़ा कान्तिवान।
नेमिनाथ भाग्य की यह पाण्डुकशिला धरी।। ३२।।

दोनों कान जौहरि दुकान के समान शोभें।
दोनों माँहि मणिमयी कुण्डल लसत हैं।।
मानों मुखराज के हैं दोनों ओर द्वारपाल।
कुण्डलों के रूप में यो रम्य सरसत हैं।।
अथवा ये गुप्तचर होंगे मुखराज के।
कानों पास आय गुप्त बात वह कहत हैं।।
छाये बाल कानन पै मानो कर्ण राज पर।
अहः केश मयी यह चमर ढुरत हैं।। ३३।।

अहः स्नेहमयी बाल के समान बाल।
काले काले और घुंघराले अति शोभते।।
चोटी माँहि गुँथे लम्बे लम्बे केश यह।
नागवेणि के समान मानस कों मोहते।।
वेणी में से छूट लट आय गई गालन पै।
बन्धन से छूट मानों केश यों बोलते।।
हो गये स्वतन्त्र अब नाँही परतन्त्र हम।
ऐसो कह मानों वे मूँछें मरोरते।।३४।।

छाये केश मुख पै लागे केश उन पै।
मानो मुख चन्द्र को ये मेघ दल घेरते।।
मेघ ही सिपाही मानो गहें अपराधियों कों।
केश जाल माँहि देखो मुख को लपेटते।।
याने बहु केश किये तथा मीन-मेख किये।
चोर लेवे हृदय जो याकी ओर देखते।।
इतने हैं दोष यामें केश भी अनेक लगे।
तो भी ये अपने कों निर्दोष देखते।।३५।।

कहाँ लौं बखान करों राजमति कन्यका को।
ताहि के समान तीन लोक में न पाइये।।
भूतकाल माँहि नाहीं ऐसी नारि कोऊ भई।
कैसे कहे 'वाके समान ये' बताइये।।
कहकें अनुपमेय चलो चलें सहचरि।
आओ आओ कृष्ण की ओर चली आइये।।
लेकें साथ उग्रसेन राय आदि सेन सब।
चलो चलें कृष्ण का स्वागत कराइये।।३६।।

(दोहा)

द्वारपाल से जब सुना, आये हैं यदुराज।
स्वागत करने को चले, उग्रसेन महाराज।।३७।।

(चाल छंद)

नृप ने भेरी बजवाई, सबही सेना सजवाई।
चतुरंगी सेना आई, धीरे धीरे चलवाई।। ३८।।
भेरी जब दीनी सुनाई, सब ही जनता जुड़ आई।
सब स्वागतार्थ मिल चाले, अपनी सुधबुध सब भाले।। ३९।।
स्वागतार्थ ही सब जन, आये हैं भागे-भागे।
सब श्याम नेह में पगि कर, चलते हैं आगे-आगे।। ४०।।

(सोरठा)

चले श्याम की ओर, सब ही जन द्रुत चाल से।
नाच रहे मन-मोर, मनु आये घनश्याम हों।। ४१।।

।। आठवाँ सर्ग समाप्त।।

नौवाँ सर्ग

विवाह-प्रस्ताव

(हरिगीत)

सारी नगरी उमड़ रही थी,
जूनागढ़ के जंगल में।
थे मुदित मानवों के मन-मानस,
जंगल के उस मंगल में।।
जंगल मन में यों सोच रहा,
फँस गया आज किस चंगुल में।
सब उतर पड़े निज वाहन से,
योद्धा कूदे ज्यों दंगल में।। १।।

सब ही ने इक दम घेर लिया,
गोपी-वल्लभ को उस वन में।
कर रहे सभी अभिवादन थे,
खुशियाँ छाई थी जन-जन में।।
सब नर-नारी यों सोच रहे थे,
प्रायः कर अपने मन में।
जिसने घनश्याम नहीं देखे,
क्या कीना उसने जीवन में।। २।।

करके रामा-श्यामा सब जन,
प्रायः नगरी की ओर बढ़े।
चल रहे मध्य में कृष्ण और,
उग्रसेन गजों पर चढ़े-बढ़े।।
अगलों बगलों में राजकुँवर,
चल रहे तुरंगों पर बैठे।
हैं नाच रहे उनके घोड़े,
प्रत्यंग अंग उनके ऐंठे।। ३।।

यह समाचार नारी जन के जब,
कानों में आ पाते हैं।
कि कृष्णराय इस जनपथ से,
इस ओर गुजरते जाते हैं।।
उनके दर्शन के लिये सभी,
निज कार्य छोड़कर धाती हैं।
जैसी हालत में थी जो बस,
वह वैसी ही आ जाती हैं।। ४।।

कोई का वस्त्र विखण्डित है,
पर उसको सुधबुध नहिं कोई।
कोई के बिखरे बाल किन्तु,
उसको भी सुधबुध नहीं कोई।।
कोइ ने आँखों का अंजन,
गालों पर भ्रम से लगा लिया।
कोई ने जल्दी-जल्दी में,
आये बालक को भगा दिया।। ५।।

आ करके सभी झरोखे में,
नीचे को प्रायः झाँक रहीं।
मुरली वाले ग्वाले को लख,
बातें आपस में फाँक रहीं।।
हैं वही कृष्ण सुन री हे सखि,
रे जरासिंध जिसने मारा।
इनके हाथों से मरा कंस,
चाणूरमल्ल भी बेचारा।। ६।।

है धन्य जन्म उस रुक्मणि का,
जिसने ऐसा वर पाया है।
है धन्य सत्यभामा रानी,
तुमको हरि ने अपनाया है।।
इस तरह सभी का मन हरते,
वे राज महल में जाते हैं।
खाना खाकर पानी पीकर,
बस बैठक में आ जाते हैं।। ७।।

कुछ यहाँ–वहाँ की बातें कर,
कहने लगते यों यदुराजा।
तुम राजमती कन्या अपनी,
दे दो श्री उग्रसेन राजा।।
श्री अनुज हमारे नेमिनाथ,
तीर्थंकर बड़े भाग्यशाली।
हैं किन्तु अभी अविवाहित ही,
पर हैं हमसे भी बलशाली।। ८।।

वे ही राजुल के लायक हैं,
राजुल भी उनके योग्य अहो।
नेमी दूलह राजुल दुलहिन,
बन जावें अपनी राय कहो।।
यह सुनकर के श्री उग्रसेन,
मन फूले नहीं समाते हैं।
होकर प्रसन्न मुद्रा धीरे,
धीरे कहने लग जाते हैं।। ९।।

नेमीश्वर–सा प्रतिभाशाली,
नर और नहीं हम पाते हैं।
उनसे बढ़कर हैं कौन कहो,
सुरगण भी शीश नवाते हैं।।
स्वीकार हमें है यदुराजा,
राजुल को यहीं बुलाते हैं।
लेकर उसकी भी राय तनिक,
पक्की शादी करवाते हैं।। १०।।

उसी समय फिर जल्दी ही,
राजुल बुलवाई जाती हैं।
सज–धज कर सखियों समेत,
धीरे–धीरे वे आती हैं।।
कर नमस्कार यदुराजा को,
औ पूज्य पिताजी को झुककर।
'नेमीश्वर' सा वर प्राप्त करो,
कहते कृष्णेश्वर हैं हँस कर।। ११।।

सुन नेमिनाथ का नाम,
कन्यका मुस्काने लग जाती है।
जेठ समझ यदुराजा को,
वह शर्माने लग जाती है।।
हँसना मुस्काना चुप रहना,
है यही सम्मती का लक्षण।
यह जान कृष्ण निज मुदरी को,
पहनाते राजुल को तत्क्षण।। १२।।

वह स्वर्ण मुद्रिका रत्नों से,
थी जड़ी मनोहर दमक रही।
थे पँच वर्ण के पँच रत्न,
जिनके मारे वह चमक रही।।
रे वाग्दान हो जाने पर,
राजा उत्सव करवाते हैं।
इस तरह बनाकर काम कृष्ण,
फिर लौट द्वारिका आते हैं।। १३।।

राजुल का मन अस्थिर होकर,
मन में विचार करता रहता।
भावों की भव्य भावना की,
सरिता में वह बहता रहता।।
वह कभी सोचती चरम शरीरी,
नेमिनाथ मेरे होंगे।
मैं भी हो जाऊँगी उनकी,
जन–जन हमको घेरे होंगे।। १४।।

अरे रवि! अब तू भी क्यों,
रे! मुझे देखकर जलता है।
जलन नहीं है तुझको यदि,
क्यों धीरे धीरे चलता है।।
यह दिन दो दिन सा लगे मुझे,
जल्दी क्यों नहीं निकलता है।
रवि शीघ्र बुला परिणय दिन को,
भई तू क्यों व्यर्थ मचलता है।। १५।।

दूँगी भैया तू जो चाहे,
जल्दी समाप्त कर दे दिन को।
छोटे-छोटे ये दिन कर दे,
समझा दे मेरा दुःख इनको।।
जब से नेमी का नाम सुना,
तब से कुछ और नहीं भाता।
उनके अभाव में हे आली,
मेरा मन यह है घबड़ाता।। १६।।

प्राणनाथ नेमीश्वर के बिन,
खाना नहीं सुहाता है।
पल-पल में हे सखि पल-पल में,
बस ध्यान उन्हीं का आता है।।
तन बैठा है जूनागढ़ में,
पर मन बैठा है प्रेमी में।
मेरा सर्वस्व द्वारिका में,
समझो बैठा है नेमी में।। १७।।

व्याकुलता एवं आशा में,
उसने अपने को दिया भुला।
इतने में निद्रा आली ने,
अपनी गोदी में लिया सुला।
आया राजुल को स्वप्न एक,
थे खड़े सामने नेमीश्वर।
आगे पीछे चौतर्फा ही,
जहँ देखो वहँ हैं प्रेमीश्वर।। १८।।

उनके मुख से है निकल रहा,
हे प्रिये! प्रिये!! हे प्रिये! प्रिये!!।
तुमको पाकर राजुल देवी,
हम जिये! जिये! हम जिये! जिये!!।।
होकर व्याकुल राजुल कहती,
आओ! आओ!! हे प्राणनाथ!!!।
हे प्राणनाथ! आओ!! आओ!!!
आओ! आओ!! हे प्राणनाथ!!! ।। १९।।

आ करके तब इकदम सखि ने,
कर पकड़ा और उठाती है।
हो गया अरे तुमको यह क्या?
यह कहकर किसे बुलाती है।।
कहती किससे हो प्राणनाथ,
कहती किससे आओ आओ।
यहाँ पर तो कोई नहीं सखि,
क्या रंग चढ़ा है बतलाओ।। २०।।

आ गई याद तुमको किसकी,
बतलाओ हे प्यारी आली।
किसकी यह स्मृति-रेखा जो,
करती है तुमको मतवाली।।
राजुल बोली क्या कहूँ सखी,
कुछ कहने में नहिं आता है।
हो गया मुझे था भ्रम आली,
पर हृदय दहलता जाता है।। २१।।

गोपी-वल्लभ के अनुज,
अभी छाये थे मेरे स्वप्नों में।
था नहिं वियोग क्षणभर पहले,
सुनरी बहना हम दोनों में।।
तूने सखि आकर जगा दिया,
औ भगा दिया प्रेमीश्वर को।
मेरे स्वप्नों के सागर से है,
उड़ा दिया नेमीश्वर को।। २२।।

देखो दुष्टनि यह चन्द्र-चन्द्रिका,
जला रही मुझको बहना।
लगें आग के गोला से,
मेरे को तेरे यह गहना।।
प्राणनाथ नेमीश्वर के बिन,
नहिं होगा मेरा रहना।
है कसम तुझे मेरी प्रिय सखि,
यह बात किसी से मत कहना।। २३।।

व्याकुल मेरे कर कमल सखी,
देखो कितने कुम्लाये हैं।
देखो मेरे यह नेत्रकमल,
कितने आँसू भर लाये हैं।।
ये आँसू हैं व्याकुलता के,
इनमें अनिष्ट का लेश नहीं।
आशा–लतिका के सिंचक ये,
सचमुच किंचित् छल द्वेष नहीं।। २४।।

(इन्द्रवज्रा)

जो मैं नई वस्तु विलोकती हूँ।
वह देख मेरा मन ऊब जाता।।
आली सुनो नाथ जिनेश नेमी।
आओ बुलाते संकेत द्वारा।। २५।।

जाती नहीं मैं पर किन्तु आली।
मेरा मनो मानस डोलता है।।
छाया तमो मण्डल आज मोपै।
प्यारे तुम्हें मैं क्यों नहिं भुलाती।। २६।।

काया अरी तू अब डोलती क्यों।
मानो तुझे कँपन ने हिलाया।।
नेमी तुम्हारे अब दर्शनों की।
आशा लगी मानस डोलता है।। २७।।

नारी यही चाहत है हमेशा।
प्रेमी उसे भी अपना बना ले।।
सेवा सदा वह करती रहेगी।
ज्यादा नहीं वह कुछ चाहती है।। २८।।

स्वामी मुझे दर्शन दीजियेगा।
इच्छा नहीं है कुछ और मेरी।।
आली बुला ला वह हैं वहाँ ही।
भूली अरे वे मन माँहि बैठे।।२९।।

स्वामी मनो मानस में छुपे क्यों।
आँखें हमारी नहिं देख पातीं।।
आओ लखेंगी हम भी तुम्हारी।
शोभा सुनो नाथ गरीब की भी।। ३०।।

पादाम्बुजों को नहलायेगी ये।
धारा बहा के कुछ आँसुओं की।।
आती रहे याद सदा तुम्हारी।
रक्षा करो नाथ जरा हमारी।। ३१।।

(आर्या छन्द)

वह वियोगनी बाला, आशा में बँधी हुई रोती है।
सुनो पाठकों आगे, जो होनहार होती है ।।३२ ।।

(रेवता छन्द)

(तर्ज – जगाया तुमने कितनी बार.....)

द्वारिका में आये यदुराज, सजाये गये तहाँ सब साज।
आ गये कृष्ण सहज सानन्द, हो रहा चौतर्फा आनन्द।।३३।।

दिया तैयारी का आदेश, सभी तक पहुँचाया सन्देश।
सभी में छाया है उल्लास, आ रहा ओठों पर मृदु हास।।३४।।

(दोहा)

तैयारी अब ब्याह की, होने लगी विशेष।
नगरी में उत्सव करो, निकल गया आदेश।।३५।।

।। नौवाँ सर्ग समाप्त ।।

दसवाँ सर्ग

नेमीश्वर का वैराग्य चिन्तवन

(द्रुतविलम्बित छन्द)

नगर में खुशियाँ अब छा गईं।
मगन मोहन में सब हो गये।।
वदन में सबके उल्लास था।
सब जनें मन में खुश हो रहे।।१।।

सकल नारि सुमंगल गा रहीं।
बज रही मनमोहन बीन भी।।
अरे विरुदावली चारण गा रहे।
जिनवरेश्वर नेमि प्रसन्न हैं।।२।।

(मनहरण कवित्त)

बाज रहे बाजे तह झ न न न झ न न न।
झ न न न झ न न न झनन बजत हैं।।
तन नन तन नन तान लेत तहाँ पर।
भन नन भन नन भौंरे भगत हैं।।
सन नन सन नन नभ माहिं छाय रही।
न न न न न न न न कोई न कहत है।।
आना जाना आना जाना जहाँ तहाँ लग रहा।
सब जन यहाँ वहाँ डोलत फिरत हैं।। ३।।

(हरिगीत)

आ गये सभी आमंत्रित जन,
राजे महराजे सब आये।
जय विजय विराट धृष्ट अर्जुन,
युधिष्ठर भीम नकुल आये।।
सारण अंगद अरु धव उद्धव,
सत सहदेव सुमुख आये।
अक्षर जरराज द्रुपद राजा,
तथा म्लेच्छादिक आये।। ४।।

आ गया समय आसन्न तथा,
सबही बरात चलने लागी।
कोई चल रहे तुरंगों पर,
कोइ गज बैठे बड़ भागी।।
कोई हय गय रथ में बैठे,
प्यादे पैदल ही चले तहाँ।
लखकर बरात नेमीश्वर की,
शत्रुदल निज कर मले वहाँ।। ५।।

मध्य माँहि सुन्दर शोभित,
अरु सजे धजे सुन्दर रथ में।
सज–धज बैठे दूलह नेमी,
चल रहे आज राजपथ में।।
चँदोबा ऊपर बँधे हुये,
झालरें बगल में लटक रहीं।
हीरे पन्ने मणि रत्नावलि,
चमचमा रही औ अटक रहीं।। ६।।

रे हरितमणि रथ में लटका,
हरि के समान शोभित होता।
रे नीलमणी में हरी श्यामता,
आय गई है यह लगता।।
श्री नेमीश्वर के रूप और,
सुन्दरता का वर्णन करना।
गुणगान तथा स्तुति करना,
हमसे नहिं हो सकता वरना।। ७।।

करके बतला देता पाठक,
यह नहीं मुझे कहना पड़ता।
औ नहीं खड़ा रहता जग में,
अब तक तो मैं शिवगढ़ चड़ता।।
उनके चरणों का क्या कहना,
जिसने चरणामृत पाया है।
तर गया वही भवसागर से,
माया ने नहीं सताया है।। ८।।

थे सोच रहे श्री जिन मन में,
नव बाला का संगम होगा।
मन शीतल शान्त सदन होगा,
कितना आनन्दित मन होगा।।
स्नेहमयी हम दोनों की,
आँखें जब चार चार होंगी।
बातें होंगी घातें होंगी,
क्रीड़ायें बार-बार होंगी।। ९।।

काले-काले कच केशों में,
मेरा कर जब उलझा होगा।
कच्चे धागे में बँधा हुआ,
जीवन कितना सुलझा होगा।।
मुझको उदास लखकर राजुल,
जब कभी कहेगी प्राणनाथ।
हे प्राणनाथ! मेरे मालिक!!
मेरे मालिक! हे प्राणनाथ!!।। १०।।

मैं भी तो इकदम बोलूँगा,
क्या कहो कहो मेरी रानी!!।
रानी! रानी!! दिल की रानी!!
क्या कहो कहो मेरी रानी!!।।
इस तरह विविध क्रीड़ाओं में,
जीवन घटिकायें बीतेंगी।
प्रेमामृत से भरी हुई यह,
आँखें कभी न रीतेंगी।। ११।।

सच है जीवन में यौवन तरु,
यौवना बिना निष्फल होता।
यौवना बिना मादक का मन,
प्रायः खाता रहता गोता।।
नर में कठोरता रहती है,
किन्तु नारी में कोमलता।
कर में कपोल में केशों में,
रहती है कितनी निर्मलता।। १२।।

उठ रहीं भावनायें अनेक,
नेमीश्वर के हृदयस्थल में।
मानो उठती हों असि धारें,
कुरू-क्षेत्र युद्ध-स्थल में।।
व्याकुल हो रही वहाँ राजुल,
औ नेमि यहाँ अकुलाते हैं।
दो हृदय परस्पर मिलने को,
व्याकुल होते घबड़ाते हैं।। १३।।

पर स्वार्थमयी दुनियादारी यह,
कहाँ चाहती बतलाओ।
राजत्व चाहिये है जिसको,
क्या जानें प्रेम कहो आओ।।
क्या विधि को भी स्वीकार नहीं था,
इन विरहों का सम्मेलन।
विधि की करतूत लखो पाठक,
कैसा करता यह उद्वेलन।। १४।।

जब गर्दन श्री नेमीश्वर ने,
ऊपर की ओर उठाई है।
तब पड़ी नजर मृग झुण्डों पर,
कँपकँपी शरीर में छाई है।।
सबही मृग भूखे प्यासे हैं,
अरु पड़े हुये हैं बन्धन में।
लखकर उनकी यह दीनदशा,
यों सोचे नेमीश्वर मन में।। १५।।

इनको बन्धन में क्यों डाला,
मन में सोचा औ पूछ उठे।
हृदय–स्थल में नेमीश्वर के,
वैराग्य भाव कुछ गूँज उठे।।
बोले किंकर नेमीश्वर से,
हे दीनानाथ कृपाल सुनो।
आदेश मिला कृष्णेश्वर का,
देवाधिदेव भूपाल सुनो।। १६।।

बारात आपकी आई है,
इसीलिये इनको रोका।
मेरे कारण इनका बन्धन,
अपने मन में उनने सोचा।।
इनके बन्धन अर क्रन्दन का,
कारण हूँ एकमात्र मैं ही।
अर इसका उत्तरदायी भी,
तो एकमात्र हूँ बस मैं ही।। १७।।

मोही अज्ञानी यह दुनिया,
बस सुख ही खोजा करती है।
सुख नहीं किन्तु उसको मिलता,
वह चक्कर खाती रहती है।।
यह मन मतंग सोचा करता,
धन में सुख का आवास रहे।
या राज संपदा में बैठा,
या कामिनि में वह वास करे।। १८।।

या तो रहता है भोजन में,
या भवनों में बैठा रहता।
या बाग तड़ाग कमलिनी में,
या वासित सुमनों में रहता।।
या रहता क्रीड़ा-कानन में,
या कामिनि के तन में रहता।
या रहता है चल-चित्रों में,
या झरनों में है वह बहता।। १९।।

या नारी के भूभृंगों में,
या अलकावलि में रहता है।
या भावनि के मधुर हास्य,
या हावभाव में झरता है।।
या तो रहता कान्तानन में,
अथवा चितवन में बसता है।
नूपुर की ध्वनि में मस्त रहे,
या पग की सेवा करता है।। २०।।

नारी के आकर्षण में या,
रहता आभा-मण्डल में।
अथवा कोयल के समान,
रहता कोमल कण्ठ-स्थल में।।
या नारी के मुख-मण्डल में,
या पाद-पद्म में बसता है।
या कामिनि कपोल करयुग में,
वह निर्द्वन्द्व विचरता है।। २१।।

है स्वर्ग यही अपवर्ग यही,
इससे ज्यादह क्या सुख होगा।
सुख तो भरपूर यहाँ बैठा,
ईश्वर आवास कहाँ होगा।।
नर कामिनि में कामुकता बस,
हरदम सौन्दर्य निरखता है।
नव बाला की उस मदिरा में,
अवगुण नहिं एक परखता है।।२२।।

यौवन मद की इस मदिरा में,
मद-मत्त अरे हो जाता है।
मानुष जीवन को गवाँ मूर्ख,
अपना सर्वस्व गमाता है।।
तू नहीं जानता धन कामिनि,
के पीछे क्यों अब रोता है।
जीवन पुँगी के नाश हेतु,
निश्चय सुतीक्ष्ण सरोता है।। २३।।

अरे मूढ़ जग! तू अब तो,
क्यों व्यर्थ अभी तक सोता है।
तू नहीं जानता है मूरख,
तेरे पीछे क्या होता है।।
तेरे पीछे ही नेमि अरे!
गोपी-वल्लभ अकुलाते हैं।
तेरे पीछे ही दीन हीन,
मृग-गण भी सताये जाते हैं।। २४।।

तू नहीं जानता यह तन तो,
बस! हाड माँस का लोथा है।
मज्जा मज्जित मल मूत्र सहित,
यह सप्त धातुमय थोता है।।
बस मोहनीय के वश होकर,
अब तक इसमें सुख माना है।
अब तो हे नेमि! विलोक इसे,
इक दिन मूरख मर जाना है।। २५।।

यदि धन में सुख का वास रहे,
तो धनिक दुखी क्यों होते हैं।
यदि रहता है वह कामिनि में,
कामिनिवाले क्यों रोते हैं।।
यदि राज माँहि सुख रहता है,
तो राजे क्यों अकुलाते हैं।
आकुलता में सुख नहीं रंच,
ऐसा सब शास्त्र बताते हैं।। २६।।

भवनों में सुख यदि रहता है,
तो स्वयं अरे क्यों ढ़ह जाते।
जगती तल में हो पूर्ण सुखी,
ऐसा नर नहीं देख पाते।।
कोई धन बिन दुखियारा है,
कोई रोगी हो रोता है।
कोई यदि धनिक निरोगी है,
कामिनि-विहीन वह होता है।। २७।।

कानी लूली काली गोरी,
यदि कामनि भी मिल जाती है।
बन्ध्या होने से वह नारी,
सन्तान हीन रह जाती है।।
संतान हुई पर योग्य नहीं,
तो भी सुख-लाभ न होता है।
संसारिक सुख को भोग भोग,
फिर सुख के पीछे रोता है।। २८।।

अतएव आज ही इसी समय,
मैं अविचल सुख को खोजूँगा।
गर्मी सर्दी आँधी ओले की,
ओर न किंचित् देखूँगा।।
रे! अविचल अविनश्वर अनादि,
अनुपम आनन्द अखिल जग में।
रे! नहीं दीखता है मुझको,
इस चमक-दमक औ जगमग में।। २९।।

अरे! दूसरों का शोषण कर,
जो सुख नर पा सकता है।
यह नहीं कहा होगा उसने,
बस इतनी आवश्यकता है।।
ज्यों ज्यों वैभव बढ़ता जाता,
त्यों त्यों इच्छायें भी बढ़ती।
आकुलता बढ़ती ही जाती,
आवश्यकतायें आ पड़ती।। ३०।।

बल से छल से औ दल-बल से,
शोषण नर करने लगता है।
और जोड़ना नहिं छोड़ता,
जब तक मरने लगता है।।
कितनी व्याकुलता बोल रही,
व्याकुल पशुओं की आहों में।
क्या सुख होगा कुछ सोचो तो,
हिंसा मूलक इन ब्याहों में।। ३१।।

ब्याह ब्याह अरु वाह वाह के,
पीछे दुनिया मरती है।
वाह वाह की चाह मात्र से,
मार-काट भी करती है।।
वाह वाह के नामों पर,
लाखों का द्रव्य लुटाते हैं।
ब्याह ब्याह करके मूरख,
जग-कीचड़ में फँस जाते हैं।। ३२।।

नहीं चाहिये वाह वाह औ,
नहीं चाहिये ब्याह मुझे।
व्याकुल करती है बस केवल,
उन दीन-मृगों की आह मुझे।।
एक व्यक्ति के बस विवाह को,
लाखों की यह आह अहो।
एक व्यक्ति के लिये बन्धुवर!
अगणित का बलिदान कहो।। ३३।।

आडम्बरयुत इन ब्याहों की,
है नहीं जरूरत जगती में।
प्रेम-पाश में हिंसा की,
आवश्यकता किस गिनती में।।
यदि परस्पर में दो दिल,
मिल जाते हैं आकर्षण से।
क्या मतलब है इस दल-दल से,
क्या मतलब अर्षण-कर्षण से ।। ३४।।

क्या मतलब है आडम्बर से,
क्या मतलब है इस दल-बल से।
यदि परस्पर में दो दिल,
मतलब दोनों अन्तस्थल से।।
चाहे राजे-महाराजे हों,
चाहे वह रंक-भिखारी हों।
चाहे वो हों नौकर चाकर,
चाहे जग के अधिकारी हों।। ३५।।

मिलना चाहे यदि दो प्राणी तो,
मिल जावें यह दल-बल क्या।
यह हिंसा क्या यह छल-बल क्या,
ब्याहों में यह युद्धस्थल क्या।।
लड़ करके ब्याह कहीं होते,
होते हैं कहीं झगड़ करके।
वैभव से मार काट करके,
होते हैं ब्याह अकड़ करके।। ३६।।

ऐसे ब्याहों को नमस्कार !
हम तो अन ब्याहे ही चोखे।
जिन ब्याहों के कारण खाने,
पड़ते हैं प्रायः कर धोखे।।
श्री नेमिनाथ के चिन्तन में,
जब इस जग से वैराग्य हुआ।
उसी समय उनके मन में,
दीक्षा लेने का भाव हुआ।। ३७।।

(दोहा)

नेमिनाथ के हृदय में, छाये भाव अनेक।
मानो नीले गगन में, जलधर फिरें अनेक।।३८।।

नेमीश्वर जिन चल पड़े, गिरनारी की ओर।
सभी देखते रह गये, अपनी-अपनी ओर।।३९।।

अनुप्रेक्षा का चिन्तवन, करने लगे जिनेश।
वैरागी लख नेमि को, विचलित हुये नरेश।।४०।।

।। दसवाँ सर्ग समाप्त।।

ग्यारहवाँ सर्ग

बारह भावनायें

(दोहा)

जिन–दीक्षा लेते समय, नेमिनाथ जिनराज।
बारह भावन चिन्तवन, करते बारम्बार।।१।।

(हरिगीत)

अनित्यभावना

भोर की स्वर्णिम छटा सम,
क्षणिक सब संयोग हैं।
पद्म–पत्रों पर पड़े जल,
–बिन्दु सम सब भोग हैं।।
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम,
लालिमा है भाल की।
सब पर पड़ी मनहूस छाया,
विकट काल–कराल की।। २।।

अंजुली-जल सम जवानी,
क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा,
नजदीक आती जा रही।।
काल की काली घटा,
प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा,
तरुण होती जा रही।। ३।।

दुखमयी पर्याय क्षण,
-भंगुर सदा कैसे रहे।
अमर है ध्रुव आतमा वह,
मृत्यु को कैसे वरे।।
ध्रुवधाम से जो विमुख,
पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ४।।

संयोग क्षणभंगुर सभी,
पर आतमा ध्रुवधाम है।
पर्याय लयधर्मा परन्तु,
द्रव्य शाश्वत-धाम है।।
इस सत्य को पहिचानना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ५।।

अशरणभावना

छिद्रमय हो नाव डगमग,
चल रही मझधार में।
दुर्भाग्य से जो पड़ गई,
दुर्दैव के अधिकार में।।
तब शरण होगा कौन जब,
नाविक डुबो दे धार में।
संयोग सब अशरण, शरण,
कोई नहीं संसार में।। ६।।

जिन्दगी इक पल कभी,
कोई बढ़ा नहीं पायेगा।
रस-रसायन सुत सुभट,
कोई बचा नहीं पायेगा।।
सत्यार्थ है बस बात यह,
कुछ भी कहो व्यवहार में।
जीवन-मरण अशरण-शरण,
कोई नहीं संसार में।। ७।।

निज आत्मा निश्चय-शरण,
व्यवहार से परमातमा।
जो खोजता पर की शरण,
वह आतमा बहिरातमा।।
ध्रुवधाम से जो विमुख वह,
वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ८।।

संयोग हैं अशरण सभी,
निज आतमा ध्रुवधाम है।
पर्याय लयधर्मा परन्तु,
द्रव्य शाश्वत धाम है।।
इस सत्य को पहिचानना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ९।।

संसारभावना

दुखम निरर्थक मलिन,
जो सम्पूर्णतः निस्सार है।
जग-जालमय गति चार में,
संसरण ही संसार है।।
भ्रम-रोगवश भव-भव भ्रमण,
संसार का आधार है।
संयोगजा चिद्वृत्तियाँ ही,
वस्तुतः संसार है।। १०।।

संयोग हों अनुकूल फिर भी,
सुख नहीं संसार में।
संयोग को संसार में,
सुख कहें बस व्यवहार में।।
दुख-द्वन्द्व हैं चिद्वृत्तियाँ,
संयोग ही जगफन्द है।
निज आतमा बस एक ही,
आनन्द का रसकन्द है।। ११।।

मन्थन करे दिन-रात जल,
घृत हाथ में आवे नहीं।
रज-रेत पेले रात-दिन पर,
तेल ज्यों पावे नहीं।।
सद्भाग्य बिन ज्यों सम्पदा,
मिलती नहीं व्यापार में।
निज आतमा के भान बिन,
त्यों सुख नहीं संसार में ।। १२ ।।

संसार है पर्याय में,
निज आतमा ध्रुवधाम है।
संसार संकटमय परन्तु,
आतमा सुखधाम है।।
सुखधाम से जो विमुख वह,
पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है ।। १३ ।।

एकत्वभावना

आनन्द का रसकन्द-सागर,
सागर शान्ति का निज आतमा।
सब द्रव्य जड़ पर ज्ञान का,
घन-पिण्ड केवल आतमा।।
जीवन-मरण सुख-दुख सभी,
भोगे अकेला आतमा।
शिव-स्वर्ग नर्क-निगोद में,
जावे अकेला आतमा ।। १४ ।।

इस सत्य से अनभिज्ञ ही,
रहते सदा बहिरातमा।
पहिचानते निजतत्त्व जो,
वे ही विवेकी आतमा।।
निज आतमा को जानकर,
निज में जमे जो आतमा।
वे भव्यजन बन जायेंगे,
पर्याय में परमातमा।। १५।।

सत्यार्थ है बस बात यह,
कुछ भी कहो व्यवहार में।
संयोग हैं सर्वत्र पर,
साथी नहीं संसार में।।
संयोग की आराधना,
संसार का आधार है।
एकत्व की आराधना,
आराधना का सार है।। १६।।

एकत्व ही शिव सत्य है,
सौन्दर्य है एकत्व में।
स्वाधीनता सुख शान्ति का,
आवास है एकत्व में।।
एकत्व को पहिचानना ही,
भावना का सार है।
एकत्व की आराधना,
आराधना का सार है।। १७।।

अन्यत्वभावना

जिस देह में आतम रहे,
वह देह भी जब भिन्न है।
तब क्या करें उनकी कथा,
जो क्षेत्र से भी अन्य हैं।।
हैं भिन्न परिजन भिन्न पुरजन,
भिन्न ही धन-धाम हैं।
है भिन्न भगिनी भिन्न जननी,
भिन्न ही प्रिय वाम है।। १८।।

अनुज-अग्रज सुत-सुता प्रिय,
सुहृद जन सब भिन्न हैं।
ये शुभ-अशुभ संयोगजा,
चिद्वृत्तियाँ भी अन्य हैं।।
स्वोन्मुख चिद्वृत्तियाँ भी,
आतमा से अन्य हैं।
चैतन्यमय ध्रुव आतमा,
गुण-भेद से भी भिन्न है।। १९।।

गुण-भेद से जो भिन्न है,
आनन्द का रसकन्द है।
है संग्रहालय शक्तियों का,
ज्ञान का घन-पिण्ड है।।
वह साध्य है आराध्य है,
आराधना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना का,
एक ही आधार है।। २०।।

जो जानते इस सत्य को,
वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की,
बात ही कुछ अन्य है।।
अन्यत्व को पहिचानना ही,
भावना का सार है।
एकत्व की आराधना,
आराधना का सार है।। २१।।

अशुचिभावना

जिस देह को निज जानकर,
नित रम रहा जिस देह में।
जिस देह को निज मानकर,
रच-पच रहा जिस देह में।।
जिस देह में अनुराग है,
एकत्व है जिस देह में।
क्षण एक भी सोचा कभी,
क्या-क्या भरा उस देह में।। २२।।

क्या-क्या भरा उस देह में,
अनुराग है जिस देह में।
उस देह का क्या रूप है,
आतम रहे जिस देह में।।
मलिनमल-पल-रुधिर-कीकस-
वसा का आवास है।
जड़रूप है तन किन्तु इसमें,
चेतना का वास है।। २३।।

चेतना का वास है,
दुर्गन्धमय इस देह में।
शुद्धातमा का वास है,
इस मलिन कारागेह में।।
इस देह के संयोग में,
जो वस्तु पलभर आयेगी।
वह भी मलिन मल-मूत्रमय,
दुर्गन्धमय हो जायेगी।। २४।।

किन्तु रह इस देह में,
निर्मल रहा जो आतमा।
वह ज्ञेय है श्रद्धेय है,
बस ध्येय भी वह आतमा।।
उस आतमा की साधना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। २५।।

आस्रवभावना

संयोगजा चिद्वृत्तियाँ,
भ्रमकूप आस्रवरूप हैं।
दुखरूप हैं दुखकरण हैं,
अशरण मलिन जड़रूप हैं।।
संयोग-विरहित आतमा,
पावन शरण चिद्रूप है।
भ्रम-रोग-हर सन्तोषकर,
सुखकरण है सुखरूप है।। २६।।

इस भेद से अनभिज्ञता,
मद-मोह-मदिरा-पान है।
इस भेद को पहिचानना ही,
आतमा का भान है।।
इस भेद की अनभिज्ञता,
संसार का आधार है।
इस भेद की नित भावना ही,
भव-जलधि का पार है।। २७।।

इस भेद से अनभिज्ञ ही,
रहते सदा बहिरातमा।
जो जानते इस भेद को,
वे ही विवेकी आतमा।।
यह जानकर पहिचानकर,
निज में जमे जो आतमा।
वे भव्यजन बन जायेंगे,
पर्याय में परमातमा।। २८।।

हैं हेय आस्रवभाव सब,
श्रद्धेय निज शुद्धातमा।
प्रिय ध्येय निश्चय ज्ञेय केवल,
श्रेय निज शुद्धातमा।।
इस सत्य को पहिचानना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। २९।।

संवरभावना

देह-देवल में रहे पर,
देह से जो भिन्न है।
है राग जिसमें किन्तु जो,
उस राग से भी अन्य है।।
गुणभेद से भी भिन्न है,
पर्याय से भी पार है।
जो साधकों की साधना का,
एक ही आधार है।। ३०।।

मैं हूँ वही शुद्धात्मा,
चैतन्य का मार्तण्ड हूँ।
आनन्द का रसकन्द हूँ मैं,
ज्ञान का घनपिण्ड हूँ।।
मैं ध्येय हूँ श्रद्धेय हूँ मैं,
ज्ञेय हूँ मैं ज्ञान हूँ।
बस एक ज्ञायकभाव हूँ मैं,
मैं स्वयं भगवान हूँ।। ३१।।

यह जानना पहिचानना ही,
ज्ञान है श्रद्धान है।
केवल स्वयं की साधना,
आराधना ही ध्यान है।।
यह ज्ञान यह श्रद्धान बस,
यह साधना आराधना।
बस यही संवरतत्त्व है,
बस यही संवरभावना।। ३२।।

इस सत्य को पहिचानते,
वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की,
बात ही कुछ अन्य है।।
शुद्धातमा को जानना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ३३।।

निर्जराभावना

शुद्धातमा की रुची संवर,
साधना है निर्जरा।
ध्रुवधाम निज भगवान की,
आराधना है निर्जरा।।
निर्मम दशा है निर्जरा,
निर्मल दशा है निर्जरा।
निज आतमा की ओर बढ़ती,
भावना है निर्जरा।। ३४।।

वैराग्य-जननी राग की,
विध्वंसनी है निर्जरा।
है साधकों की संगिनी,
आनन्दजननी निर्जरा।।
तप-त्याग की सुख-शान्ति की,
विस्तारनी है निर्जरा।
संसार पारावार-पार-
उतारनी है निर्जरा।। ३५।।

निज आतमा के भान बिन है,
निर्जरा किस काम की।
निज आतमा के ध्यान बिन,
है निर्जरा बस नाम की।।
है बन्ध की विध्वंसनी,
आराधना ध्रुवधाम की।
यह निर्जरा बस एक ही,
आराधकों के काम की।। ३६।।

इस सत्य को पहिचानते,
वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की,
बात ही कुछ अन्य है।।
शुद्धातमा की साधना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ३७।।

लोकभावना

निज आतमा के भान बिन,
षट्द्रव्यमय इस लोक में।
भ्रम-रोग-वश भव-भव भ्रमण,
करता रहा त्रैलोक्य में।।
करता रहा नित संसरण,
जग-जालमय गति चार में।
समभाव बिन सुख रञ्च भी,
पाया नहीं संसार में।। ३८।।

नर–नर्क–स्वर्ग–निगोद में,
परिभ्रमण ही संसार है।
षट्द्रव्यमय इस लोक में,
बस आतमा ही सार है।।
निज आतमा ही सार है,
स्वाधीन है सम्पूर्ण है।
आराध्य है सत्यार्थ है,
परमार्थ है परिपूर्ण है।। ३९।।

निष्काम है निष्क्रोध है,
निर्मान है निर्मोह है।
निर्द्वन्द्व है निर्दण्ड है,
निर्ग्रन्थ है निर्दोष है।।
निर्मूढ़ है नीराग है,
आलोक है चिल्लोक है।
जिसमें झलकते लोक सब वह,
आतमा ही लोक है।। ४०।।

निज आतमा ही लोक है,
निज आतमा ही सार है।
आनन्द–जननी भावना का,
एक ही आधार है।।
यह जानना पहिचानना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ४१।।

बोधिदुर्लभभावना

इन्द्रियों के भोग एवं,
भोगने की भावना।
हैं सुलभ सब दुर्लभ नहीं है,
इन सभी का पावना।।
है महादुर्लभ आतमा को,
जानना पहिचानना।
है महादुर्लभ आतमा की,
साधना आराधना।। ४२।।

नर देह उत्तम देश पूरण,
आयु शुभ आजीविका।
दुर्वासना की मन्दता,
परिवार की अनुकूलता।।
सत् सज्जनों की संगती,
सद्धर्म की आराधना।
है उत्तरोत्तर महादुर्लभ,
आत्मा की साधना।। ४३।।

जब मैं स्वयं ही ज्ञेय हूँ,
जब मैं स्वयं ही ज्ञान हूँ।
जब मैं स्वयं ही ध्येय हूँ,
जब मैं स्वयं ही ध्यान हूँ।।
जब मैं स्वयं आराध्य हूँ,
जब मैं स्वयं आराधना।
जब मैं स्वयं ही साध्य हूँ,
जब मैं स्वयं ही साधना।। ४४।।

जब जानना पहिचानना,
निज साधना आराधना।
ही बोधि है तो सुलभ ही है,
बोधि की आराधना।।
निज तत्त्व को पहिचानना ही,
भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ४५।।

धर्मभावना

निज आतमा को जानना,
पहिचानना ही धर्म है।
निज आतमा की साधना,
आराधना ही धर्म है।।
शुद्धातमा की साधना,
आराधना का मर्म है।
निज आतमा की ओर बढ़ती,
भावना ही धर्म है।। ४६।।

काम-धेनु कल्पतरु,
संकटहरण बस नाम के।
रतन चिन्तामणी भी हैं,
चाह बिन किस काम के।।
भोग-सामग्री मिले,
अनिवार्य है पर याचना।
है व्यर्थ ही इन कल्पतरु,
चिन्तामणी की चाहना।। ४७।।

धर्म ही वह कल्पतरु है,
नहीं जिसमें याचना।
धर्म ही चिन्तामणी है,
नहीं जिसमें चाहना।।
धर्मतरु से याचना बिन,
पूर्ण होती कामना।
धर्म चिन्तामणी है,
शुद्धातमा की साधना।। ४८।।

शुद्धातमा की साधना,
अध्यात्म का आधार है।
शुद्धातमा की भावना ही,
भावना का सार है।।
वैराग्य-जननी भावना का,
एक ही आधार है।
ध्रुवधाम की आराधना,
आराधना का सार है।। ४९।।

(दोहा)

अनुप्रेक्षा का चिन्तवन, करके बारम्बार।
वस्त्रादिक परित्याग कर, वेश दिगम्बर धार।। ५०।।

पंच-मुष्टि से केश सब, लुंचे श्री मुनिराज।
आत्मध्यान में रत हुये, मुनिवर नेमिकुमार।। ५१।।

।। ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त।।

बारहवाँ सर्ग

राजुल का विलाप

(दोहा)

श्रावण शुक्ला चतुर्थी, दीक्षा धरी जिनेश।
आत्मध्यान की दशा में, प्रभु ने किया प्रवेश।। १।।

(पद्धरिका)

निज आत्मध्यान में लीन हुये,
श्री नेमीश्वर मुनिराज यहाँ।
अब जूनागढ़ को चलते हैं,
देखें क्या-क्या हो रहा वहाँ।।
किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहे,
सब जन राजुल सहित यहाँ।
सभी नागरिक हैं व्याकुल,
सन्तप्त और उद्विग्न यहाँ।। २।।

यद्यपि नेमी निर्मोही हैं,
पर हमको यह अनुमान न था।
कि ऐसा भी हो सकता है,
इसका हमको कुछ भान न था।।
रे भान न था अनुमान न था,
उनने भी दिल से हाँ की थी।
हो गया अचानक यह सब कुछ,
जिसकी न रंच आशंका थी।। ३।।

न शंका थी आशंका थी,
हम तो निशंक मन डोल रहे।
अन्तर-अन्तर में अति प्रसन्न,
बाहर से कुछ न बोल रहे।।
हम सोच रहे थे मन ही मन,
नेमीश्वर के दर्शन होंगे।
हाँ वरराजा नेमीश्वर के,
दर्शन होंगे दर्शन होंगे।। ४।।

सब लोग इकट्ठे हो जाते,
कोई कुछ भी न बोल रहा।
सब एक-दूसरे को देखें,
सबका ही मानस डोल रहा।।
सब सोच रहे मन ही मन में,
क्या होगा राजुल बेटी का।
अब क्या होगा, अब क्या होगा,
क्या होगा राजुल बेटी का।। ५।।

कुछ नहीं समझ में आता है,
कुछ नहीं बोलता है कोई।
सब एक दूसरे को देखें,
पर नहीं डोलता है कोई।।
इकदम सन्नाटा छाया है,
हो गया गजब यह अनहोना।
अब इसमें क्या हो सकता है,
हो गया वही जो था होना।। ६।।

श्री उग्रसेन श्री जयावती से,
कुछ कहते हैं हौले-हौले।
अब क्या हो सकता कहो प्रिये,
धीरे-धीरे से यों बोले।।
हो गया गजब यह अनहोना,
कुछ नहीं समझ में आता है।
क्या कहूँ नाथ तुम बतलाओ,
विभ्रम बढ़ता ही जाता है।। ७।।

रे राजुल है उद्विग्न बहुत,
अब उसको कैसे समझायें।
क्या बोलें उससे किस मुँह से,
कुछ भी तो समझ नहीं आये।।
यद्यपि बेटी है समझदार,
पर यह आघात वज्र का है।
आखिर तो वह सुकुमारी है,
अर यह आघात वज्र का है।। ८।।

राजुल मूच्छित हो जाती है,
अर आँय-बाँय कुछ भी बोले।
वह बहुत सँभलती है लेकिन,
उसका तन-मन थर-थर डोले।।
मैंने क्या गलत किया प्रियवर,
क्यों मुझे छोड़कर चले गये।
इसका उत्तर देना होगा,
क्यों मुझे छोड़कर चले गये।। ९।।

यदि शादी करना इष्ट न था,
तो क्यों बरात लेकर आये।
क्यों कर स्वीकार किया पहले,
मेरे सपनों में क्यों आये।।
सपनों में आकर चले गये,
यह एक बार भी न सोचा।
तेरे सपनों में रमी हुई,
इस राजमती का क्या होगा।। १०।।

इस राजमती का क्या होगा,
इसके सपनों का क्या होगा।
इसने जो स्वप्न संजोये थे,
अब उन स्वप्नों का क्या होगा?
जो बातें तुमसे करनी थी,
अब उन बातों का क्या होगा?
जो घातें तुमसे करनी थी,
अब उन घातों का क्या होगा।। ११।।

क्या तुम्हें दोष दूँ हे प्रियवर,
मैं ही अभागिनी नारी हूँ।
नेमी जैसा वरराज मिला,
फिर भी आफत की मारी हूँ।।
ऐसी दुखयारी तो देखीं,
जिनके पति योग्य नहीं होते।
अत्यन्त योग्य जिसके पति हैं,
पर मैं ऐसी दुखयारी हूँ।। १२।।

अच्छाई भी बन जाती है,
दुनियाँदारी में दोष कभी।
बैरागी होना अच्छा है,
यह कहने में संकोच नहीं।।
रे वैसे तो इस दुनियाँ में,
वैराग्य सदा है सुखदाई।
पर इस अवसर पर नेमी का,
वैरागी होना दुखदाई।। १३।।

शादी करना है इष्ट नहीं,
ऐसा कोई संकेत न था।
उत्साह न हो इस उत्सव में,
ऐसा भी कोई चिह्न न था।।
राजुल से शादी करने का,
प्रस्ताव रखा था जब उनसे।
होकर प्रसन्न किंचित् हँसकर,
स्वीकार किया था तब उनने।। १४।।

एवं सगाई के नेगचार भी,
सभी किये थे खुशी खुशी।
अर गुरुजन के आशीर्वाद,
स्वीकार किये थे खुशी-खुशी।।
राजुल से मिलने का विकल्प,
भी उनके मन में चलता था।
मीठी-मीठी कुछ बातें हों,
ऐसा उत्साह छलकता था।। १५।।

मैं नहीं सोचती थी ऐसा,
कि इकदम ऐसा हो सकता।
अरे कल्पना के बाहर,
ऐसा तो कभी नहीं होता।।
पर ऐसा ही हो रहा यहाँ,
लगती यह बात असंभव सी।
सब कुछ था इकदम ठीक ठाक,
यह बात किस तरह संभव थी।। १६।।

पर हुआ अचानक ऐसा क्या,
सब कुछ ठुकराकर चले गये।
हमसे कुछ कहे बिना आली[१],
हमको ठुकरा कर चले गये।।
हमको ठुकराकर चले गये,
सबको ठुकराकर चले गये।
होकर निष्ठुर हम सबको तज,
गिरि गिरनारी को चले गये।। १७।।

१. सखी

इस तरह विविध बातें करती,
राजुल अधीर हो जाती है।
अकुलाती है घबराती है,
उस्वांसे भरती जाती है।।
उसकी व्याकुलता देख स्वप्न में,
नेमिनाथ आ जाते हैं।
अत्यन्त शान्त धीरे-धीरे,
वे राजुल को समझाते हैं।। १८।।

राजुल इस तरह अधीर होना,
आतमहित का सन्मार्ग नहीं।
रोना-धोना व्याकुल होना,
है समझदार का काम नहीं।।
इन संयोगों का मेला-ठेला,
अध्रुव अनित्य क्षणभंगुर है।
क्या इसका भान नहीं तुमको,
फिर क्यों तुम इतनी व्याकुल हो।। १९।।

यह रागभाव भी इसी तरह,
अध्रुव है ध्रुव का धाम नहीं।
इस रागभाव का मर जाना,
यह कोई असंभव काम नहीं।।
जब मैं बरात लेकर आया,
तब रागी था अनुरागी था।
क्षण में अध्रुव अनुराग मरा,
अर आज वीतरागी हूँ मैं।। २०।।

मैंने कोइ धोखा नहीं दिया,
शादी की मैंने हाँ की थी।
सब बात एकदम पक्की थी,
मन से पूरी तैयारी थी।।
शादी करने का राग एकदम,
टूट गया अर छूट गया।
अब बिना राग के हे राजुल,
शादी कैसे हो सकती है।। २१ ।।

रागी से बैरागी होना,
यह तो कोई अपराध नहीं।
न धोखा है न छल प्रपंच,
इसमें है कोई पाप नहीं।।
शादी हो जाने पर होता,
तो क्या होता अनुमान नहीं।
कब क्या होगा कैसे होगा,
इसका है किसी को भान नहीं।। २२ ।।

सपने में ही राजुल बोली,
मैं भी अब दीक्षा धारूँगी।
नेमीश्वर ने जो किया वही,
मैं भी करके बतला दूँगी।।
उनके पदचिन्हों पर चलना,
अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।
रे उनकी अनुगामिन होना,
अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।। २३ ।।

नेमीश्वर बोले – हे राजुल!
यह तो सच्चा वैराग्य नहीं।
अनुगामिनी होना हे देवी!
यह तो कोई सौभाग्य नहीं।।
यह तो है मुझमें महामोह
जो मेरे सी बनना चाहो।
पतिदेव समझकर के अपना
अब मुझको अपनाना चाहो।।२४।।

मैं नहीं तुम्हारा कुछ भी हूँ
मैं एक दिगम्बर संन्यासी।
जो नहीं किसी का कुछ होता
उसका भी नहीं कोई साथी।।
मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण
पर की मुझमें कुछ गंध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।। २५।।

तुम भी कुछ नहीं किसी की हो
तुम शुद्धातम हो अविनाशी।
तुम करो स्वयं में अपनापन
पाओ अपना पद अविनाशी।।
तुम अपने को ही अपनाओ
केवल अपना अभ्यास करो।
पर की आशा को छोड़ स्वयं
केवल अपना ही ध्यान धरो।। २६।।

सुपने में ही राजुल बोली–
मुझको अपनालो प्राणनाथ।
जो आप कहेंगे वह सब ही
अपना लूँगी मैं प्राणनाथ।।
समझाने के लिये सही
पर आप पधारे हैं प्रियवर।
अब अपनाने के लिये प्रभो!
हम हाथ जोड़ते हैं प्रियवर।। २७।।

हे नाथ! सुनो रे हम–तुम तो
पिछले नौ भव के साथी हैं।
अपना संबंध न इस भव का
हम तो भव–भव के साथी हैं।।
मैं क्या बोलूँ हे नाथ आप तो
सभी जानते हैं स्वामी।
हम एक आतमा दो शरीर
ऐसे जीवन संगाती हैं।। २८।।

इतना जूना संबंध आपने
इक झटके में तोड़ दिया।
नौ–नौ भव की इस साथिन को
बातों–बातों में छोड़ दिया।।
भले आपने छोड़ दिया अर
तोड़ दिया इक पलभर में।
पर मैं तो नहीं छोड़ सकती
जीवन धन को जीवन भर में।। २९।।

नेमिनाथ बोले – राजुल इन,
बातों में कुछ सार नहीं।
नौ–नौ भव के इन संबंधों में,
देखो तो कोई सार नहीं।।
निश्चय से देखो तो देवी,
इनका कोई आधार नहीं।
एकत्व नहीं स्वामित्व नहीं,
आधेय नहीं आधार नहीं।। ३०।।

मैंने समझाया था तुमको,
कि नहीं किसी का कोई है।
न कोइ किसी का स्वामी है,
सेवक न किसी का कोई है।।
सब हैं अपने में स्वयं पूर्ण,
न कमी किसी में कोई है।
सब ही हैं परिपूर्ण प्रभो,
स्वामी सेवक न कोई है।। ३१।।

संबंधित होना नौ भव से,
इसमें गौरव की बात नहीं।
भव का अभाव करना देवी,
ही है गौरव की बात सही।।
भव का अभाव जब करना है,
भव की चर्चा अपशगुन कही।
भव की क्यों याद दिलाती हो,
इसका कोई उपयोग नहीं।। ३२।।

यह रागभाव तोड़ो राजुल,
भव की चर्चा का अन्त करो।
मैं अधिक कहूँ क्या हे राजुल,
इस भव में भव का अन्त करो।।
भव-भव में नहीं डोलना है,
भव तो दुःखों का सागर है।
अब तक अनन्त दुःख भोगें हैं,
यह पूरी तरह उजागर है।। ३३।।

इतने में निद्रा टूट गई,
सखियाँ बोली - राजुल राजुल।
क्या हुआ हुआ क्या जो इतनी,
उद्वेलित हो राजुल राजुल।।
कुछ नहीं नहीं कुछ हे आली[१],
सुपने में नेमीश्वर आये।
बोले - राजुल तुम धैर्य धरो,
पर हम कुछ भी ना कह पाये।। ३४।।

हम रहे देखते ही उनको,
वे रहे बोलते मंगलमय।
हम तो इतने हो गये मुग्ध,
कि रहे देखते मंगलमय।।
हम दर्शन से हो गये तृप्त,
उनके दर्शन हैं मंगलमय।
हम अधिक कहें क्या हे आली,
उनके प्रवचन हैं मंगलमय।। ३५।।

१. सखी

दर्शन करके प्रवचन[१] सुनकर,
हम तृप्त हुये हम तृप्त हुये।
उनके बतलाये मारग से,
सन्तुष्ट हुये सन्तुष्ट हुये।।
इतना कह राजुल बेटी फिर,
इकदम विह्वल हो जाती है।
अकुलाती है घबराती है,
इकदम रोने लग जाती है।। ३६।।

(दोहा)

सुपने में चर्चा करे, राजुल अपने आप।
नेमिनाथ से विविध विध, करती हैं संलाप।। ३७।।

इस संलाप विलाप में, करने लगे प्रलाप।
विध-विध चर्चा धर्म की, करे आप से आप।। ३८।।

कभी एकदम शान्त हो, अपने में रम जाय।
कभी एकदम क्लान्त हो, वह रोने लग जाय।। ३९।।

(कुण्डलिया)

रोते-रोते वह करे, कभी तत्त्व की बात।
सबके मन को मोहती, करें मरम की बात।।
करे मरम की बात मोह लेती है मन को।
धन्य धन्य वह धन्य करे अपने जीवन को।।
इसी तरह दिन जाँय साँझ के होते-होते।
उसका जीवन जाय इसतरह रोते-रोते।। ४०।।

।। बारहवाँ सर्ग समाप्त।।

१. उत्कृष्ट वचन

तेरहवाँ सर्ग

पिता–पुत्री का संवाद

(दोहा)

बाबुल राजुल से कहें, बेटी धारो धैर्य।
जो होना सो हो गया, तुम न छोड़ो धैर्य।। १।।

(पद्धरिका)

राजुल से बोले उग्रसेन,
धीरज धारो मन शान्त करो।
अघटित घटना का कर विचार,
न मन को अधिक अशान्त करो।।
इसमें न किसी का दोष अरे,
समझो ऐसा ही होना था।
केवलज्ञानी ने जाना था,
जो कुछ जैसा जो होना था।। २।।

जिस कारण से जिस समय जहाँ,
जिस विधि से जैसा होना हो।
उस कारण से उस समय वहाँ,
उस विधि से वैसा होता है।।
अनहोना कभी न होता है,
वह ही होता जो होना हो।
उस ही निमित्तपूर्वक होता,
जो जिस निमित्त से होना हो।। ३।।

उनका स्वभाव वैरागी था,
अर काललब्धि भी आई थी।
अर होनहार ऐसी ही थी,
दीक्षा की बेला आई थी।।
पुरुषार्थ जगा अन्तर में था,
सब तरह पूर्ण तैयारी थी।
केवल निमित्त ही बाकी था,
अब उसकी ही बारी थी।। ४।।

पशुओं के बन्धन को देखा,
अर सुना उन्हीं का आक्रन्दन।
करुणा से विगलित हुआ हृदय,
उद्विग्न हुये करुणा सागर।।
अन्दर से सब तैयारी थी,
अर निमित्त भी आ पहुँचा।
नेमी ने रथ को मोड़ दिया,
रथ गिरनारी में जा पहुँचा।। ५।।

पाँचों समवाय दीक्षा के,
हो गये उपस्थित जंगल में।
रे जातिस्मरण हुआ जिन को,
लोकान्तिक आये मंगलमय।।
अच्छा सोचा अच्छा सोचा,
कहकर उत्साहित करते हैं।
सौधर्म आदि आकर तत्क्षण,
दीक्षा महोत्सव करते हैं।। ६ ।।

राजुल को बाबुल समझाते,
इस महासत्य को तुम जानो।
जो कुछ भी जैसा नक्की था,
है हुआ वही – ऐसा मानो।।
और आपका भी राजुल,
जो होना है वह ही होगा।
वह ही होगा वह ही होगा,
जो जिनवर ने जाना होगा।। ७ ।।

ऋषभदेव ने बता दिया,
कोड़ाकोड़ी वर्षों पहले।
मारीचि महावीर होगा,
यह जता दिया वर्षों पहले।।
जननी होगी त्रिशला देवी,
राजा सिद्धार्थ जनक होंगे।
कब और कहाँ सब बता दिया,
जब और जहाँ जैसे होंगे।। ८ ।।

सिद्धारथ राजा की शादी,
त्रिशलादेवी से ही होगी।
यह भी नक्की तब से ही था,
इसमें न मीन-मेख होगी।।
इसका तो अर्थ यही होगा,
कि सबका सब-कुछ नक्की है।
है नहीं किसी के वश में कुछ,
सब-कुछ अनादि से नक्की है।। ९।।

बाल ब्रह्मचारी होंगे श्री,
नेमि जिनेश्वर इस भव में।
यह भी जाना होगा बेटी,
श्री तीर्थंकर ऋषभेश्वर ने।।
जो कुछ घटना है घटी यहाँ,
जैसी की तैसी यह भी तो।
जानी होगी ऋषभेश्वर ने,
बतलाई होगी यह भी तो।। १०।।

अघटित कुछ भी है नहीं हुआ,
सब कुछ पहले से नक्की था।
हम नहीं जानते थे केवल,
बाकी सब कुछ तो नक्की था।।
राजुल बेटी तेरा विवाह,
उससे ही होगा इस भव में।
जिससे होना नक्की होगा,
उससे ही होगा इस भव में।। ११।।

मेरी शादी नेमीश्वर से,
यह नक्की किया आपने था।
मैंने दिल से स्वीकार किया,
जो नक्की किया आपने था।।
पर आज आप यह कहते हैं,
जिससे होना नक्की होगा।
मैं समझ नहीं पाती हूँ कुछ,
नक्की है या नक्की होगा।। १२।।

ऐसा ही नक्की था मेरा,
मुझको तो ऐसा लगता है।
होगी सगाई पर शादी ना,
ऐसा भी तो हो सकता है।।
हो सकता क्या ऐसा ही है,
आशंका इसमें रंच नहीं।
इस परमसत्य में हे बाबुल,
मुझको आशंका रंच नहीं।। १३।।

जिनवर ने नक्की नहीं किया,
जो नक्की है वह जाना है।
हम तो विकल्प ही करते हैं,
मैंने तो आज यह माना है।।
अपने विकल्प से कुछ भी तो,
न होता है न होना है।
यह महासत्य स्वीकार करें,
जो होना है वह होना है।। १४।।

नक्की करना है नहीं किन्तु,
जो-जो होना सो नक्की है।
इसमें संशय है नहीं रंच,
यह बात पूर्णतः पक्की है।।
जो-जो जिसका जब-जब होना,
तब-तब होगा यह नक्की है।
जो आया दिव्यध्वनि में है,
वह बात एकदम पक्की है।। १५।।

यह परमसत्य पर हे बाबुल!
जब याद नेमि की आती है।
तब सब कुछ विस्मृत हो जाता,
छाती फटने लग जाती है।।
छाती फटने लग जाती है,
हलचल होने लग जाती है।
अब अधिक कहें क्या हे बाबुल!
जब याद नेमि की आती है।। १६।।

मेरा मन कहता बार-बार,
यह बुरा हुआ यह बुरा हुआ।
पर जब विचारती हूँ बाबुल,
क्या बुरा हुआ क्या बुरा हुआ।।
रागी से वैरागी होना,
यह तो अच्छा होना ही है।
इसमें किसका क्या बुरा हुआ,
सबका अच्छा होना ही है।। १७।।

जो रागी से वैरागी हों,
उनका अच्छा ही होता है।
जो श्रावक से साधु बनते,
उनका अच्छा ही होता है।।
चौथे गुणथानक से बाबुल,
वे छठे–सातवें में पहुँचे।
सुख में बढ़वारी अनन्त हुई,
वे अपने में ही आ पहुँचे।। १८।।

मैं सभी समझती हूँ बाबुल,
अच्छा ही हुआ न इसमें शक।
जो दिया आपने संस्कार,
उनमें मेरा विश्वास अचल।।
पर क्या कर सकती हूँ बाबुल,
जब याद नेमि की आती है।
आकुल–व्याकुल हो जाती हूँ,
मैं उन्हें भूल नहिं पाती हूँ।। १९।।

ऐसा ही होता है बेटी,
इसमें कोई आश्चर्य नहीं।
पर मन को समझाना पड़ता,
है अन्य कोई भी मार्ग नहीं।।
हो गया अरे जो कुछ भी है,
अब उसे बदलना शक्य नहीं।
सोचो समझो बेटी राजुल,
है उसे बदलना उचित नहीं।। २०।।

नेमी की परिणति शुद्ध हुई,
पर हम तुम अभी वहीं पर हैं।
वे तो अपने में लीन हुये,
पर हम उनके विकल्प में हैं।।
विकल्प जाल में उलझे हम,
वे हुये विकल्पातीत अहो।
उनको विकल्प में उलझाना,
कैसे हो सकता उचित कहो।। २१।।

वे हैं अपने में स्वयं लीन,
लौकिक सुख की कुछ चाह नहीं।
वे स्वयं स्वयं में ही सबकुछ,
पर की कुछ भी परवाह नहीं।।
बेटी तुम उनको भूल जाओ,
अब वे गुरुराज हमारे हैं।
वे नग्न दिगम्बर साधक हैं,
दुनियादारी से न्यारे हैं।। २२।।

अब उनसे कोई भी रिश्ता,
हो सकना इकदम शक्य नहीं।
वे साधु हैं सन्यासी हैं,
उनसे कुछ कहना इष्ट नहीं।।
अब उन्हें भूलना ही होगा,
इसमें कोई सन्देह नहीं।
अब अपनी सोचो हे बेटी!
अब उनको कुछ संदेश नहीं।। २३।।

बेटी का वर खोजा जाता,
चुनने की कोई बात नहीं।
जो नक्की है, वह चुनना क्या,
बस उसे जानना है भाई।।
ऐसा ही कहते आये हैं,
कि वर की खोज में हम जाते।
और खोजने पर देखो,
अच्छे वर मिल भी हैं जाते।। २४।।

जब महावीर का जान लिया,
नेमीश्वर का जाना होगा।
सर्वज्ञदेव हैं जब जिनवर,
तब निश्चित ही जाना होगा।।
यह भी तो जाना होगा कि,
अब राजमती का क्या होगा।
उसका विवाह किससे होगा,
जिससे होना निश्चित होगा।। २५।।

दूजी शादी की बात जनक,
मेरे से कभी नहीं करना।
तेरी पहली भी हुई कहाँ,
जो बात दूसरी की करना।।
अरे सातवें फेरे के,
पहले शादी ना होती है।
छठवें फेरे तक हे राजुल,
लड़की क्वारी ही रहती है।। २६।।

चर्चा चलती सगाई होती,
तो अपनापन आ जाता है।
इसका यह अर्थ कदापि नहीं,
वे पति-पत्नी हो जाते हैं।।
पति-पत्नी तो तब ही होते,
जब सप्तपदी पूरी होती।
जब तक छह फेरे पड़ें अरे,
तब तक तो बात अधूरी है।। २७।।

यदी किसी कारण वश से,
वह शादी नहिं हो पाती है।
तो फिर किसी सुयोग्य वर से,
उसकी शादी हो जाती है।।
है सर्वमान्य यह परम्परा,
इसमें है कोई दोष नहीं।
अर इसे छोड़कर हे राजुल,
कोई मारग निर्दोष नहीं।। २८।।

यदि शादी करें आप बेटी,
तो वह शादी पहली होगी।
दूजी शादी की बात कहाँ,
जो होगी वह पहली होगी।।
नेमी की शादी नहीं हुई,
हैं बाल ब्रह्मचारी जिनवर।
अभी आप भी कुँआरी हैं,
जाने-माने धरती-अम्बर।। २९।।

यदि एक विरागी हो जाता,
दूजा भी हो अनिवार्य नहीं।
देखा देखी विराग लेना भी,
तो है उत्तम कार्य नहीं।।
यदि सहजभाव से हो विराग,
तो दीक्षा लेना उत्तम है।
यदि शादी करना इष्ट लगे तो,
कर लेना ही उत्तम है।। ३०।।

यदि दीक्षा ही लेना है तो,
शोकभाव को शान्त करो।
सब प्रकार के उद्वेगों से,
अपने मन को मुक्त करो।।
जैसे कुछ भी है नहीं हुआ,
ऐसी थिति में खुद को लाओ।
दीक्षा लेने के लिये बहिन,
व्याकुलता से मुक्ति पावो।। ३१।।

(दोहा)

व्याकुलता की दशा में, त्यागभाव न होय।
शान्त चित्त में ही अरे, अव्याकुलता होय।। ३२।।

(पद्धरिका)

यद्यपि यह बात सही लगती,
पर शादी मुझे नहीं करना।
आतम कल्याण करूँ अब मैं,
अब नहीं मुझे शादी करना।।
शादी करना है बरबादी,
यह जीवन व्यर्थ चला जाता।
यदि जीवन में कुछ करना है,
एकाकी जीवन ही अच्छा।। ३३।।

हे बेटी तुमको अबतक भी,
नेमी की याद सताती है।
उनके सपने तुमको आते,
आकुल-व्याकुल हो जाती हो।।
यद्यपि अब शादी करने का,
है रंचमात्र अनुराग नहीं।
पर परिणति से तो सिद्ध यही,
संयम के योग्य विराग नहीं।। ३४।।

यदि संयम योग्य विराग नहीं,
तो उचित यही शादी करलो।
इसमें है कोई दोष नहीं,
सोचो समझो निश्चित करलो।।
यदि अनुमती तुम्हारी हो,
तो योग्य व्यक्ति की खोज करें।
जो होवें पूरी तरह योग्य,
ऐसे व्यक्ति की शोध करें।। ३५।।

शादी करना तो इष्ट नहीं,
संयम के योग्य बनाऊँगी।
संयम धारण के योग्य बनूँ,
ऐसा जीवन अपनाऊँगी।।
निज आतम का ध्यान धरूँ,
परणति में शुद्धि बढ़ाऊँगी।
आतम में रमकर हे बाबुल!
संयम के योग्य बनाऊँगी।। ३६ ।।

जिसतरह आजतक बेटी तुम,
नेमी को करती याद रहीं।
भूलीं हो उनको क्षणभर भी,
ऐसा क्षण मुझको याद नहीं।।
वे नहीं तुम्हारे कोई अब,
वे नग्न दिगम्बर संन्यासी।
उनको भूले बिन हे राजुल,
तुम कैसे होगी सन्यासी।। ३७ ।।

राजुल तुम जल्दी नहीं करो,
सोचो समझो सब बातों को।
आकुलता से बाहर निकलो,
सहना सीखो आघातों को।।
सब बाँतों को आघातों को,
एवं मन के संघातों को।
पीना सीखो जीना सीखो,
जीवन के सब संतापों को।। ३८ ।।

(कुण्डलिया)

राजुल को अच्छी लगी, यह सलाह सुखकार।
क्या करना इस बात पर, सोचें बारम्बार।।
सोचे बारम्बार विचारे अपने मन में।
क्या करना है इष्ट हमें अपने जीवन में।।
क्या कहना है इष्ट अरे अपने बाबुल को।
यह चिन्ता हो गई आज व्याकुल राजुल को।। ३९।।

(दोहा)

राजुल ने नक्की किया, अभी न कुछ तत्काल।
करना है पर सोचना, हमको बारम्बार।। ४०।।

दीक्षा के उपरान्त अब, नहीं किसी से आश।
राजुल सोचे किसतरह, बीतें बारह मास।। ४१।।

।। तेरहवाँ सर्ग समाप्त ।।

चौदहवाँ सर्ग

बारह मासा

(दोहा)

अब किसकी आशा धरें, नेमि गये गिरनार।
अब बोलो किस विधी से, बीतें बारह मास।। १।।

मौसम की प्रतिकूलता, दुर्गम गिरि गिरनार।
साधन बिन निज साधना, हो किसके आधार।। २।।

सावन

(गीतिका)

गहन गिरि गिरनार में,
मदमत्त गज चिंघाड़ते।
गजराज की चिंघाड़ सुन,
मृगराज खूब दहाड़ते।।
घनघोर बादल छा रहे हैं,
गहन गिरि, गिरनार में।
घनघोर वर्षा हो रही,
घनघोर सावन मास में।। ३।।

घनघोर सावन मास में,
घनघोर वर्षाकाल में।
रे चल दिये घनश्याम[१] जिन,
गिरनार के एकान्त में।।
वस्त्रादि सब परित्याग कर,
होकर दिगम्बर पूर्णतः।
चल दिये सब कुछ छोड़कर,
निर्मोह हो सम्पूर्णतः।। ४।।

छोटे-बड़े सब जीव जन्तु,
से भरा सम्पूर्ण वन।
डाँस-मच्छर नाग-नागिन,
बिच्छु आदिक प्राणिगण।।
कीटाणु से मृगराज तक,
रे सभी तन को छेदते।
रे सभी तन को छेदते अर,
सभी मन को भेदते।। ५।।

उद्विग्न राजुल सोचती,
ऐसे भयंकर वन विषैं।
अरे मूषलधार सावन,
मास की बरसात में।।
क्रूर हिंसक पशू पक्षी,
डाँस मच्छर बीच में।
होकर दिगम्बर पूर्णतः,
श्री नेमि जिन कैसे रहें।। ६।।

---

१. साँवले रंग के नेमिनाथ

भादो

राजुल विचारी सोचती,
गिरि गुफा में विस्तर बिना।
पाहन शिला पर सोयँगें,
पूरण दिगम्बर दशा में।।
कष्ट भोगें विविध-विध,
सेवक बिना घनश्याम-तन।
नाग-नागिन डाँस-मच्छर,
डँक मारे रात-दिन।। ७।।

पर नेमि जिन तो निरन्तर,
घनघोर भादों मास में।
घनघोर भादों मास की,
घनघोर काली रात में।।
निज आत्म के श्रद्धान में,
निज आतमा के ज्ञान में।
श्री नेमि जिन नित रत,
रहेंगे आतमा के ध्यान में।। ८।।

आसोज

जब थमेगी बरसात नेमि,
क्वार में आसोज में।
तब सरित सरवर जल अरे,
निर्मल अचल सब होयँगे।।
दश दिशायें और नभ भी,
अचल निर्मल होयँगे।
तब नेमि आँखें बन्द कर,
जग से विमुख हो सोयँगे[1]।। ९।।

---

१. जगत से उपेक्षाभाव रखकर आत्मलीन होंगे।

जब मगन होगा यह जगत,
ऋतु शरद के रसरंग में।
आनन्दमय हो उल्लसित,
हो अंतरंग उमंग में।।
तब नेमि जिन बेखबर होंगे,
जगत के इस रंग से।
निज में निरन्तर निरत,
जिनवर आतमा के रंग में।। १०।।

कार्तिक

बरसात होगी विदा थोड़ी,
शीत का हो आगमन।
कार्तिकी मौसम मनोरम,
चिपचिपाहट का गमन।।
दीपावली का सरस उत्सव,
चतुर्दिग सरसायगा।
मगन होकर सब जगत,
आनन्द में हरसायगा।। ११।।

तब नेमि जिन एकान्त में,
वन प्रान्त में होंगे खड़े।
तब जीवजन्तु विविध उनके,
बदन पर होंगे चढ़े।।
उपल सम थिर वदन लख,
वे विविध विध क्रीड़ा करें।
तब नेमि अन्तर में मगन हो,
ध्यान आतम का धरें।। १२।।

अगहन

अरे मगसिर मास में,
गिरनार गिरि के शिखर पर।
बेग होगा वायु का,
अर शीत होगी भयंकर।।
गुफाओं में छुपे होंगे,
जीव जन्तु ठिठुरकर।
निकले न घर से कोइ नर,
घर में रहें सब नारि-नर।। १३।।

तब नेमि जिन गिरि शिखर पर,
रे और मगसिर मास में।
कंपित करे तन-बदन को,
रे भयद शीत बयार में।।
तब शान्त मन स्थिर बदन,
नित रमें आतम ध्यान में।
अति निस्पृही वे नेमि जिन,
विचरे हमारे ध्यान में।। १४।।

पौष

पौष का हो माह एवं,
मावठी बरसात हो।
कपकपी छूटे सभी को,
और शीत बयार हो।।
गुफाओं में छुप रहे हों,
सभी मृगगण शान्त हो।
घोसलों में घुस गये हों,
सभी पक्षी क्लान्त हो।। १५।।

सभी जन हों तापते निज,
अग्नि के आलाव पर।
घने बादल छा रहे हों,
धुंध हो आकाश पर।।
तब दिगम्बर नेमि जिन,
गिरनार गिरि के शिखर पर।
खड़े होंगे अचल अनुपम,
आतमा का ध्यान धर।। १६।।

माघ

माघ का हो माह अर,
तोसार[१] की बोछार हो।
जम गये हों ताल सर,
अति शीत की भरमार हो।।
अति शीत से अति त्रस्त हो,
संत्रस्त हों जन-जन सभी।
अति शीत से ही जल गये हैं,
सभी वन उपवन सभी।। १७।।

कीड़े मकोड़े पशु पक्षी,
जीव जन्तु त्रस्त हैं।
वृक्ष बल्ली पेड़ पौधे,
पूर्णतः संत्रस्त हैं।।
ऐसी भयंकर शीत में,
निर्द्वन्द्व हो निर्मोह हो।
श्री नेमि आतम में रमें,
निष्कम्प हो निर्दोष हो।। १८।।

१. तुसार, पाला पड़ना

फागुन

अरे फागुन माह मादक,
सभी जन मदमस्त हैं।
मग्न हैं संलग्न हैं,
रंग-राग में अलमस्त है।।
सर्दियां तो गईं पर,
गर्मी अभी आई नहीं।
है एकदम अनुकूल ऋतु,
प्रतिकूलता कुछ भी नहीं।। १९।।

सभी जन मदमस्त हो जब,
विविध क्रीड़ा मग्न हों।
खाने-पीने खेलने में,
विविध विध संलग्न हो।।
तब नेमि जिन सब छोड़कर,
परमातमा में रत रहें।
अर इन सभी से विरत हो,
निज आतमा में रत रहें।। २०।।

चैत

शुभ माह अनुपम चैत्र में,
नित चित्त आनन्दित रहे।
शान्त हों विश्रान्त हों अति,
ही प्रफुल्लित सब रहें।।
सभी क्रीड़ा मग्न पुलकित,
लग रहे मनुहार में।
स्नान में जलपान में,
सब मान में सन्मान में।। २१।।

रे बसंती वातावरण,
एवं बसंती रंग में।
सब रँग रहे आनन्द में,
खेले सभी संग-संग में।।
उक्त वातावरण से जो,
असंग हैं बस एकदम।
वे नेमि जिन नित रम रहे,
हैं स्वयं में बस एकदम।। २२।।

बैशाख

गर्मी भयंकर होयगी,
बैशाख में गिरिराज पर।
संतप्त हो गिरिराज तब,
होगी भयंकर धूप जब।।
लू चले एवं गिरि तपे,
विश्राम सब जन्तु करें।
न चले कोई राह बस,
आराम से निज घर रहें।। २३।।

उस धूप में सब लोग छुप,
कर रहें अपने धाम में।
न करे कोई काम बस,
सब ही रहें विश्राम में।।
ऐसे समय में नेमि जिन,
गिरिनार गिरि की चोटि पर।
आसन बिना आसन जमा,
निज आतमा में रत रहें।। २४।।

जेठ

जेठ में जब लू चले,
तो आग बरसे यों लगे।
क्षुब्ध होकर सभी प्राणी,
छाँह को खोजत फिरें।।
पानी बिना प्यासे मरे,
संतप्त हो जब तरफरें।
नरक जैसा लगे तब कई,
जीव तो यों ही मरें।। २५।।

ऐसे विषम संयोग में भी,
पर्वतों की चोटी पर।
धूप में ही खड़े होकर,
ध्यान आतम का धरें।।
आतमा के ध्यान में ही,
शान्ति है आनन्द है।
अरे इसके बिना जग में,
शेष सब जग फन्द है।। २६।।

आषाढ़

गर्मियों के बाद वर्षा,
हो अरे आषाढ़ में।
सुख-शान्ति का अनुभव करें,
सबसे प्रथम आषाढ़ में।।
बालक सभी क्रीड़ा करें,
आषाढ़ की बरसात में।
मुमुक्षुजन खुशी हों ज्यों,
आतमा की बात में।। २७।।

आतमा की बात में,
अर आतमा के ज्ञान में।
आत्म के श्रद्धान एवं,
आतमा के ध्यान में।।
श्री नेमि जिन भी जम रहे,
हैं आतमा के ध्यान में।
आत्म के श्रद्धान में अर,
आतमा के ज्ञान में।। २८।।

(दोहा)

बदलें सब संयोग नित, शर्द गरम बरसात।
अन्तर में आतम बसे, एक मात्र दिन रात।। २९।।

नेमीश्वर की यह दशा, रहे सदा अभिराम।
राजुल विकलप जाल से, न ले सकी विराम।। ३०।।

राजुल सोचे इस तरह, मन में बारम्बार।
दीक्षा की है भावना, शीघ्र होंय भवपार।। ३१।।

।। चौदहवाँ सर्ग समाप्त।।

पन्द्रहवाँ सर्ग

राजुल का वैराग्य

(दोहा)

राजुल बाबुल से कहे, नमकर बारंबार।
बाबुल अब मैं क्या करूँ, बोलो सोच विचार।। १।।

(पद्धरिका)

राजुल सोचे यों बार-बार,
मुझको दीक्षा धारण करना।
बाबुल से पूँछे बार-बार,
बोलो मुझको अब क्या करना।।
दीक्षा धारण करने के पहले,
बोलो मुझको क्या करना।
दीक्षा लेने के लिये मुझे,
बोलो तैयारी क्या करना।। २।।

तैयारी की कोइ बात नहीं,
धीरज धारो बेटी मन में।
दीक्षा लेना आसान नहीं,
जब तक न शान्ति हो जीवन में।।
जब तक न शान्ति हो जीवन में,
जब तक वैराग्य न जीवन में।
संयम की आश नहीं करना,
जब तक समभाव न जीवन में।। ३।।

रे मात-पिता भाई-भगिनी,
पति से पत्नी से बच्चों से।
है रागभाव जब तक राजुल,
समभाव नहीं है जन-जन से।।
जब तक समभाव न जीवन में,
जब तक वैराग्य न जीवन में।
जब तक परिजन से रागभाव,
तब तक न संयम जीवन में।। ४।।

नेमी नेमी रटती रहती,
वैराग्य नहीं है जीवन में।
आकुल-व्याकुल होती रहती,
है शान्ति न बिलकुल जीवन में।।
हैं नेमि तुम्हारे कोई नहीं,
उनको न निशदिन याद करो।
उनके चिन्तन में हे राजुल,
न जीवन यों बरबाद करो।। ५।।

वे नहीं तुम्हारे प्रेमी हैं,
तुम नहीं प्रेमिका हो उनकी।
वे नहीं मंगेतर हैं तेरे,
तुम नहीं मंगेतर हो उनकी।।
वे नहीं तुम्हारे पतिदेव,
न हुये कभी न होंगे अब।
तोड़ो विकल्प पति-पत्नी का,
सुख-शान्ति मिलेगी तुमको तब।। ६ ।।

पूरवभव की बातें छोड़ो,
उनमें अब कोई सार नहीं।
वे गये गये इस जीवन में,
उनका कोई आधार नहीं।।
इस भव में सब कुछ छोड़ गये,
अब आगे भव होंगे ही नहीं।
हमको अभाव भव का करना,
भव कोई अच्छी चीज नहीं।। ७ ।।

पूरव भव की चर्चा न करो,
अब वर्तमान की बात करो।
जब वर्तमान में छोड़ गये,
पूरव भव की क्या बात करो।।
जो भी संबंध रहे अब तक,
व्यवहार मात्र थे असद्भूत।
उपचार मात्र उनको जानों,
निश्चय से तो वे असद्भूत।। ८ ।।

अब नग्न दिगम्बर होने से,
वे तो गुरुराज तुम्हारे हैं।
वे नहीं तुम्हारे हैं केवल,
सबके हैं और हमारे हैं।।
वे परम पूज्य हैं हम सबके,
जगतीतल के उजियारे हैं।
उनकी महिमा का अन्त नहीं,
सबकी आँखों के तारे हैं।। ९।।

उनका तो है आदेश यही,
निज आत्मतत्त्व को पहिचानो।
जिनवाणी का स्वाध्याय करो,
जीवादिक तत्त्वों को जानो।।
निज आतम की पहिचान नहीं,
अब तक पर को अपना जाना।
पर में ही लीन रहा अब तक,
पर में ही अपना हित माना।। १०।।

अब स्वपर भेदविज्ञान करो,
जग को दो भागों में बाँटो।
षट्द्रव्यमयी इस दुनियाँ से,
केवल अपने को ही छाँटो।।
बस एक ओर केवल मैं हूँ,
है अन्य ओर सारी दुनियाँ।
बस एकमात्र मैं ज्ञायक हूँ,
अर ज्ञेय रही सारी दुनियाँ।। ११।।

केवल अपने में अपनापन,
ही सम्यग्दर्शन कहा अहा।
निज को निजरूप जानने को,
श्री जिनवर ने सद्ज्ञान कहा।।
निज में रमने को जमने को है,
सम्यग्चरित्र का नाम दिया।
यह ही है निश्चय मुक्ति मार्ग,
सर्वज्ञ देव ने बता दिया।। १२।।

इनको जानो निज को देखो,
यह शिक्षा की तैयारी है।
सबसे अपनेपन को तोड़ो,
यह दीक्षा की तैयारी है।।
यदि अपनापन रह गया कहीं,
तो उसको कैसे छोड़ोगी।
उससे यदि राग रहा किंचित्,
उससे कैसे मुख मोड़ोगी।। १३।।

यदि दीक्षा लेना इष्ट तुम्हें,
तो इस मारग को अपनाओ।
है यही एक निश्चय मारग,
इस पर आगे बढ़ती जावो।।
वन के मौसम के कष्टों पर,
न ध्यान धरो न घबराओ।
अपने में जावो हे राजुल,
जम जावो और समा जावो।। १४।।

(दोहा)

अनुमति माँगे जनक से, राजुल बारम्बार।
संयम धारण करण को, जाना है गिरनार।। १५।।

तैयारी के बिना ही, नेमि गये गिरनार।
समझ न आवे मुझे क्यों, रोकें बारम्बार।। १६।।

क्षण में जैसे वे मुड़े, वैसे ही हे तात।
मैं भी मुड़ना चाहती, और नहीं कुछ बात।। १७।।

राजुल से बाबुल कहें, नेमी से क्या होड़।
जन्मजात सद्दृष्टि वे, हैं जग में बेजोड़।। १८।।

मुक्ति में वे जायेंगे, जाने सब संसार।
कह नहिं सकते और हम, कब होंगे भव पार।। १९।।

महिलायें जंगल विषैं, एकाकी न जाँय।
केवलज्ञानी होंय ना, नहीं मोक्ष में जाँय।। २०।।

सम्यग्दर्शन से सहित, नारी जन्म न होय।
आठ बरस की वय बिना, सम्यग्दर्श न होय।। २१।।

सम्यग्दर्शन के बिना, संयम धरम न होय।
तातैं सम्यग्दर्श को, प्राप्त करो सब कोय।। २२।।

देव–गुरु के रूप में, हैं नेमिनाथ भगवान।
देव–गुरु के रूप को, बेटी तू पहचान।। २३।।

देव–गुरु–श्रद्धान बिन, सम्यग्दर्श न होय।
सम्यग्दर्शन के बिना, सम्यग्ज्ञान न होय।। २४।।

सम्यग्दर्शन–ज्ञान बिन, संयमभाव न होय।
जब ये तीनों एक हों, मुक्तिमार्ग है सोय।। २५।।

रे विराग इसको कहे, यह है संयमभाव।
परमधरम है यह दशा, यह है परमस्वभाव।। २६।।

संयम भाव बिना नहीं, भवसागर का अन्त।
महिमा संयमभाव की, है सुखदाय अनन्त।। २७।।

जब से गिरि गिरनार की, ओर मुड़े जिनराय।
राजुल तेरा स्मरण, नहीं किया इकबार।। २८।।

नेमी नेमी तू रटे, प्रतिपल बारम्बार।
उन में तुम में क्या फरक, मन में जरा विचार।। २९।।

इसप्रकार समझा रहे, बाबुल विविध प्रकार।
नेमि का अब क्या हुआ, इसका करें विचार।। ३०।।

नेमिनाथ को केवलज्ञान होना

(पद्धरिका)

जब नेमिनाथ की दीक्षा को,
छप्पन दिन होने को आये।
अपने में पूरण समा गये,
तब क्षायिक श्रेणी चढ़ पाये।।
अरे क्षपक श्रेणी में चढ़ कर,
मोह भाव का नाश किया।
सम्पूर्ण वीतरागी होकर,
अपने स्वभाव को प्राप्त किया।। ३१।।

फिर दर्शन ज्ञान आवरण एवं,
अन्तराय का नाश किया।
अर केवलज्ञान प्राप्त करके,
अरिहंत दशा को प्राप्त किया।।
दर्शन ज्ञान अनन्त और,
सुख वीर्य अनन्ते प्राप्त हुये।
नेमिनाथ मुनिवर तीर्थंकर,
नेमिनाथ भगवान हुये।। ३२।।

अरे क्वार सुद एकम् के दिन,
प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
पलभर को तो नरकों में भी,
शान्ति हुई आनन्द हुआ।।
जन-जन प्रमुदित हो उठे,
और जन-जन में मंगल गान हुआ।
उनके प्रभाव से जंगल में,
मंगलमय मंगल गान हुआ।। ३३।।

सौधर्म इन्द्र ने हाजिर हो,
केवल कल्याणक का उत्सव।
ठाठ-बाट से किया भव्य,
रे समोसरण की रचना कर।।
दिव्यध्वनि का दिव्य प्रसारण,
प्रतिदिन होने लगा वहाँ।
तत्त्वज्ञान की अविरल वर्षा,
प्रतिदिन होने लगी वहाँ।। ३४।।

रे उनकी धर्मसभा में प्रतिदिन,
तीन बार प्रवचन होते।
अरे हजारों भव्य जीव,
अति मंगलमय प्रवचन सुनते।।
अरे अकेले मनुज नहीं,
देवों के झुण्ड-झुण्ड आते।
सैनी पंचेन्द्रिय पशु पक्षी,
उनके प्रवचन सुनने आते।। ३५।।

अरे विरोधी जन्मजात पशु,
एक साथ प्रवचन सुनते।
सर्प-नकुल अर शेर-गाय,
सब एक घाट पानी पीते।।
परम अहिंसक शान्त वायु,
मण्डल वन जाता मंगलमय।
नर सुर तिर्यग सब जीवों का,
जीवन हो जाता मंगलमय।। ३६।।

तीन गति के जीव सदा,
उनकी कल्याणी वाणी का।
भरपूर लाभ लेते प्रतिदिन,
आनन्दमयी जिनवाणी का।।
उसमें चर्चा होती निशदिन,
निज आतम की परमातम की।
रे आगम की परमागम की,
बस चर्चा एक जिनागम की।। ३७।।

एकाक्षरी उनकी वाणी,
उसको अनक्षरी भी कहते।
है ध्वनि मात्र वश ओम रूप,
इसको ही दिव्यध्वनि कहते।।
यद्यपि होती वह ओम रूप,
पर श्रोताओं के कानों में।
उनकी भाषामय हो जाती,
पड़ती है जिनके कानों में।। ३८।।

(दोहा)

दिव्यध्वनि जिनदेव की, खिरती रही पवित्र।
भव्यजीव सुनते रहे, ज्यों भित्ति के चित्र।। ३९।।

मात-पिता की सीख से, जैनधर्म की लीक।
राजुल चित का सन्तुलन, हुआ एकदम ठीक।। ४०।।

दशदिशि का वातावरण, हुआ एकदम शुद्ध।
राजुल का भी चिन्तवन, होने लगा विशुद्ध।। ४१।।

(पद्धरिका)

रे नेमिनाथ से अपनापन,
अब टूट गया है राजुल का।
पति-पत्नि वाला राग एकदम,
छूट गया है राजुल का।।
रे शान्त हो गया चित्त जनक,
जननी से चित्त विरक्त हुआ।
जग से विरक्त होकर मानस,
अब अपने में अनुरक्त हुआ।। ४२।।

लौकिक सम्बन्धों से विरक्त,
होकर दीक्षा धारण करने।
तैयार हुई राजुल मन से,
तो लगी सोचने यों मन में।।
मैं भगवन् श्री नेमिनाथ के,
चरणों में दीक्षा लूँगी।
उनकी दिव्य देशना को,
मैं गहराई से समझूँगी।। ४३।।

वे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो,
एवं हितकारी उपदेशक।
उनको न किसी से राग-द्वेष,
वे नहीं किसी के संरक्षक।।
वे तो अपने में लीन सदा,
वे नहीं किसी का कुछ करते।
वे तो केवल ज्ञाता-दृष्टा,
निज को पर को देखा करते।। ४४।।

जो कर्त्ता-धर्त्ता कहते हैं,
वे नहीं समझते हैं कुछ भी।
जो उनसे माँगें विषय भोग,
वे नहीं समझते हैं कुछ भी।।
वे नहीं किसी को कुछ देते,
वे नहीं किसी से कुछ लेते।
वे तो केवल ज्ञाता-दृष्टा,
जो हो बस उसे जान लेते।। ४५ ।।

उनकी तो दिव्यध्वनि खिरती,
वे नहीं किसी से कुछ बोलें।
कोई कुछ कहता रहे भलें,
पर वे अपना मुँह न खोलें।।
वे बात व्यक्तिगत नहिं करते,
सामूहिक दिव्यध्वनि खिरती।
उसमें आता है तत्त्वज्ञान,
जन-जन की आकुलता मिटती।। ४६ ।।

छह द्रव्यों का नव तत्त्वों का,
सन्तुलित कथन उसमें आता।
अनेकान्त अर स्याद्वाद,
सापेक्ष कथन उसमें आता।।
विविध नयों एवं प्रमाण का,
प्रतिपादन भी है होता।
कर्मों के दशकरणों का,
विस्तृत वर्णन उसमें होता।। ४७ ।।

चरणानुयोग प्रथमानुयोग की,
बातें भी सब आती हैं।
जिन आगम की सब ही बातें,
जिन दिव्यध्वनि में आती हैं।।
आगम का परमागम का,
आधार दिव्यध्वनि ही होती।
ज्ञानी जीवों के वचनों का,
आधार दिव्यध्वनि ही होती।। ४८ ।।

जैनधर्म से संबंधित सब,
बातें जानी राजुल ने।
बाबुल ने जो-जो समझाया,
वह समझा है सब राजुल ने।।
राजुल अब दीक्षा लेने को,
तन से मन से तैयार हुई।
बाबुल की अनुमति प्राप्त हुई,
वैराग्य भाव को प्राप्त हुई।। ४९ ।।

(दोहा)

स्वस्थ चित्त राजुल हुई, शोक रोग से पार।
अब न शिकायत किसी से, कोइ रही इस बार।। ५० ।।

सबसे ममता त्याग कर, समता धर गंभीर।
संयम धारण के लिये, होने लगी अधीर।। ५१ ।।

।। पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ।।

सोलहवाँ सर्ग

राजुल की दीक्षा

(दोहा)

ले अनुमति जननी–जनक, राजुल है तैयार।
अब बेटी की विदा को, बाबुल भी तैयार।। १।।

नेमिनाथ के चरण में, नमकर बारम्बार।
राजुल दीक्षा लेयगी, समोसरन के द्वार।। २।।

(पद्धरिका)

श्री उग्रसेन परिवार सहित,
नेमीश्वर के दर्शन करने।
गिरनार गिरि पर जा पहुँचे,
नेमीश्वर के प्रवचन सुनने।।
दर्शन करने प्रवचन सुनने,
वे भक्ति भाव से जा पहुँचे।
और हजारों जन–जन भी निज,
भक्तिभाव से जा पहुँचे।। ३।।

अपने कोठे में बैठ सभी ने,
दिव्यध्वनि रस पान किया।
अपनी-अपनी शक्ति से सुन,
अन्तर्मुख होकर मनन किया।।
श्रवण मनन मन्थन करके,
पूरी शक्ति से ग्रहण किया।
जिससे जितना बन सका सभी ने,
यथायोग्य परिणमन किया।। ४।।

चरणों में झुककर राजुल ने,
व्रत धारण का संकल्प किया।
आर्या के व्रत धारण करके,
न कोई अन्य विकल्प किया।।
दुनियादारी के सब विकल्प तज,
निज को निज में हि अनन्य किया।।
दृढ़ता से व्रत पालन करके,
अपने जीवन को धन्य किया।। ५।।

फिर आत्मसाधना में रत हो,
निज शुद्धि की वृद्धि द्वारा।
निर्जरा तत्त्व की सिद्धि कर,
निज जीवन धन्य बना डाला।।
निज आत्म साधना के बल पर,
संयम को आतमसात किया।
अपनी क्षमता के बल पर ही,
गणनी के पद को प्राप्त किया।। ६।।

बलदेव का प्रश्न

अति भव्य द्वारिका नगरी यह,
देवोपनीत अति सुन्दरतम।
है अनुपमेय इसका वैभव,
इसकी शोभा है मादकतम।।
यह तो सब लोग जानते हैं,
यह अद्‌भुत है मंगलमय है।
और आपके रहने से यह,
हुई परम मंगलमय है।। ७।।

अब आप छोड़कर चले गये,
तो अब भविष्य क्या है इसका।
कब तक ऐसी ही रहे प्रभो,
कैसा क्या कब होगा इसका।।
अच्छा ही होगा हे प्रभुवर,
फिर भी विकल्प आया मुझको।
मैंने रोका पर हे जिनवर,
मैं नहीं रोक पाया उसको।। ८।।

मेरे मुख से तो निकल गया,
पर तदनन्तर मैं पछताया।
क्यों मैंने ऐसा प्रश्न किया,
ऐसा विकल्प मुझको आया।।
बोली गोली के ही समान,
होती है सारा जग जाने।
जो निकल गई सो निकल गई,
अब तो है केवल पछताने।। ९।।

ऐसा कहकर बलदेव राय,
इकदम चुप होकर बैठ गये।
पर यह जिज्ञासा जन-जन के,
मन को मरोड़ती छोड़ गये।।
जन-जन के मन में तेजी से,
यह भाव उमड़ने लगे वहाँ।
सब सोच रहे मन ही मन में,
यह भाव घुमड़ने लगे वहाँ।। १०।।

अब नहीं रही यह एक व्यक्ति की,
जिज्ञासा तुम यह जानो।
अब यह जिज्ञासा जन-जन की,
हो गई यही सब पहिचानो।।
अब क्या होगा अब क्या होगा,
सब लोग सोचते रहे यहाँ।
अब कहते हैं हे भव्य सुनो,
अब आगे जो कुछ हुआ वहाँ।। ११।।

दिव्यध्वनि में समागत उत्तर

बारह वर्षों के बाद द्वारिका,
पूरी तरह नष्ट होगी।
अग्नि में जलकर यह नगरी,
अब पूरी तरह भस्म होगी।।
द्वीपायन मुनि का प्रबल क्रोध,
इसमें निमित्त कारण होगा।
उन्मादक मादक मदिरा भी,
इसमें निमित्त कारण होगी।। १२।।

बलदेव कृष्ण को छोड़ किसी का,
जीवित रहना शक्य नहीं।
सब कुछ स्वाहा हो जावेगा,
कुछ भी बच पाना शक्य नहीं।।
नेमिदेव की दिव्यध्वनि में,
समाचार ऐसा आया।
आकुल-व्याकुल हो गये सभी,
जनता में सन्नाटा छाया।। १३।।

जो-जो थे प्रवचन में हाजिर,
अधिकांश द्वारकावासी थे।
उनका व्यापार और रहना,
सब काम द्वारिका में ही थे।।
नाते-रिश्ते परिवार सभी,
बस इसी द्वारिका में ही थे।
बन्धुजन सुहृद[१] शुभचिन्तक,
सब इसी द्वारिका में ही थे।। १४।।

अरे द्वारिका जलने का है,
अर्थ सभी जल जावेंगे।
सोचो उन लोगों के मन में,
कैसे विचार आते होंगे।।
कैसी होगी उनकी हालत,
क्या क्या मन में आता होगा।
उन लोगों ने अपने मन में,
न जाने क्या सोचा होगा।। १५।।

१. मित्र

श्रीकृष्ण ने द्वीपायन से,
बोला – तुमने क्या सोचा।
द्वीपायन बोले – बहुत दूर,
जाने का मैंने है सोचा।।
अच्छा सोचा जल्दी जावो,
अब करो न देरी यहाँ रंच।
यदि नहीं सोचते तुम तो,
फिर हमें सोचना पड़ता कुछ।। १६।।

महामात्य को बुला – कहा,
जल्दी शराब बन्दी कर दो।
आदेश निकालो इसी समय,
तत्काल उसे लागू कर दो।।
डोढ़ी पिटवा दो गाँव–गाँव,
न कोई मदिरा पान करे।
न कोई नशे में दिखे कहीं,
सब आज्ञा का सन्मान करें।। १७।।

यह भविष्यवाणी सुनकर,
मुनिदीक्षा ली हज्जारों ने।
श्रावक के व्रत धरने वालों,
की संख्या थी हज्जारों में।।
प्राप्त किया सम्यग्दर्शन,
ऐसे भी लोग हजारों थे।
अपनी–अपनी शक्ति प्रमाण,
सब ही संयम के धारक थे।। १८।।

पुरजन परिजन से श्रीकृष्ण,
गम्भीर स्वरों में यों बोले।
अब आप सभी संयम धारें,
कहते उनका धीरज डोले।।
मैं संयम धारण कर न सकूँ,
है मुझे दुःख इसका भारी।
संयम धरने के भाव बहुत,
पर इसमें मेरी लाचारी।। १९।।

पर आप लोग संयम धारें,
बस एकमात्र यह मारग है।
कोशिश सब तरह करेंगे हम,
पर अन्य न कोई मारग है।।
सर्वज्ञदेव की वाणी में,
जैसा जो सुनने में आया।
वह तो वैसा ही होगा पर,
हमको विकल्प ऐसा आया।। २०।।

बहुत लोग संयम धरकर,
आतमहित में लग जावेंगे।
पर सभी लोग ना एकसाथ,
संयम धारण कर पावेंगे।।
यद्यपि तीर्थंकर वाणी में,
यह महासत्य आया भाई।
फिर भी विश्वास न होने से,
सब लाभ न ले सकते भाई।। २१।।

यद्यपि जाना यह परम सत्य,
रे एक साथ सब लोगों ने।
पर नहीं एक-सी प्रतिक्रिया,
दिखलाई दी उन लोगों में।।
कोई बोला - ऐसी बातें तो,
हरदम होती रहती हैं।
होता जाता कुछ नहीं किन्तु,
चर्चायें होती रहती हैं।। २२।।

जिसके मन में जो कुछ आता,
वह वैसा ही कह देता है।
कुछ लोग हवा दे देते हैं,
वह जग में फैला देता है।।
सब जग उद्वेलित हो जाता,
व्याकुलतायें बढ़ जाती हैं।
अफवाहों से सारे जग में,
आकुलतायें बढ़ जाती हैं।। २३।।

इनसे घबड़ा कर कई लोग,
धन-धान्य छोड़ भग जाते हैं।
उनके अच्छे अच्छे बंगले,
सब यहीं पड़े रह जाते हैं।।
या तो सस्ते में बिक जाते,
या यों ही पड़े रह जाते हैं।
उनको संभालता नहिं कोई,
बिलकुल खण्डहर हो जाते हैं।। २४।।

अथवा तो कोई निकट भव्य,
आतमहित में लग जाते हैं।
अथवा कोई अज्ञानीजन,
बिन सोचे ही मर जाते हैं।।
सबकी परिणति न्यारी-न्यारी,
सबका भविष्य न्यारा-न्यारा।
कोई अपने में मगन रहे,
कोई फिरता मारा-मारा।। २५।।

यादव गण उत्तर भारत से,
भगकर पश्चिम में आये थे।
वहाँ का सब कुछ वहाँ ही छोड़ा,
यहाँ खाली हाथों आये थे।।
अब यहाँ का यहीं नष्ट होगा,
फिर खाली हाथों जावेंगे।
आना जाना जाना आना,
यों ही करते रह जावेंगे।। २६।।

बस इसी तरह लगभग सबका,
ऐसा ही होता रहता है।
आना जाना जाना आना,
ऐसा ही होता रहता है।।
इस जग में ऐसा होता है,
इस भव में ऐसा होता है।
अब अधिक कहें क्या हे भाई!
भव-भव में ऐसा होता है।। २७।।

यद्यपि तीर्थंकर वाणी में,
यह महासत्य आया भाई।
फिर भी विश्वास न होने से,
सब लाभ न ले सकते भाई।।
जिसकी जैसी हो होनहार,
अर काललब्धि जैसी आई।
अब अधिक कहें क्या हे भाई!
उसको वैसी बुद्धि आई।। २८।।

जाने वालों की सम्पत्ति,
रे औने-पौने दामों में।
उनसे खरीद ली लोगों ने,
उसको भर दी गोदामों में।।
था उसे छोड़ने का अवसर,
पर इसने तो भर ली भाई।
जिसका होना था सर्वनाश,
उसको ऐसी बुद्धि आई।। २९।।

जिसके जब दुर्दिन आते हैं,
बुद्धि भी उल्टी हो जाती।
जिसका जैसा होना होता,
उसको वैसी बुद्धि आती।।
जब मरणकाल आता मृग का,
मृगराज गुफा में जाता है।
जब उसे शिकार मिलना होता,
मृग स्वयं गुफा में आता है।। ३०।।

जब सियार का मरणकाल,
आता है तब उसकी बुद्धि।
नगर ओर भग जाने की,
हो जाती है उसकी बुद्धि।।
आया था जिनका मरणकाल,
उनको ऐसा ही भाव हुआ।
मरना-जीना सब कुछ सहकर,
वहाँ ही रहने का भाव हुआ।। ३१।।

जो समझदार वैरागी थे,
उन सबने तो दीक्षा ले ली।
कुछ अणुव्रती कुछ महाव्रती,
हो यथायोग्य दीक्षा ले ली।।
जो समझदार थे श्रावक जन,
उनने नगरी को छोड़ दिया।
वे अन्य नगर को चले गये,
अपना जीवनरथ मोड़ दिया।। ३२।।

जब पता चल गया था सबको,
था नगर छोड़ना आवश्यक।
था लोभ अधिक विश्वास न था,
रहने को समझा आवश्यक।।
रहने को समझा इक अवसर,
एवं कमाई का मौका है।
इस ही कारण कुछ लोगों को,
हो गया सहज ही धोका है।। ३३।।

ऐसी घटनायें सब जग में,
रे अकस्मात ही होती हैं।
पलभर भी समय नहीं मिलता,
सब अकस्मात ही होता है।।
किसको मिलता ऐसा अवसर,
बारह वर्षों पहले आया।
चल गया पता सारे जग को,
फिर भी न लाभ उठा पाया।। ३४।।

निज को संभालने को भाई,
इतना अवसर कम नहिं होता।
इतने में तो सोचो भाई!
कुछ नहीं, अरे सब कुछ होता।।
युग होता बारह वर्षों का,
इक युग का अवसर मिला हमें।
अवसर न मिला – ऐसा कहना,
न उचित हमें न गिला हमें।। ३५।।

यदि नेमीश्वर की वाणी पर,
सबको विश्वास हुआ होता।
यादव गण का सम्पूर्ण नगर,
दिनभर में ही खाली होता।।
आस-पास के नगरों में,
यादव गण पूर्ण समा जाते।
कोई संकट में न रहता,
सब लोग सुरक्षित हो जाते।। ३६।।

पर जिनका जीवन शेष न था,
थी होनहार जल कर मरना।
वे द्वारावति में जमे रहे,
उनके बारे में क्या कहना।।
उनका जलना उनका मरना,
रे स्वयं आग में आ पड़ना।
यह कह कर ही सन्तोष करें,
उनका ऐसा ही था होना।। ३७।।

जो रहे जोम में जमे रहे,
उनके निर्णय का क्या कहना।
उनका मरना निश्चित ही था,
उनके बारे में क्या कहना।।
रे दिव्यध्वनि में आया जो,
वह परम सत्य स्वीकार नहीं।
जिसकी आशा में बैठे हैं,
उसका कोई आधार नहीं।। ३८।।

यह होना तो नक्की ही था,
अर यथासमय पर होता भी।
तत्काल न हम कुछ कर पाते,
जो होना है वह होता ही।।
पहले से पता चला हमको,
हम चाहें नगर बदल सकते।
हम चाहें दीक्षा ले सकते,
हम अपने में जम-रम सकते।। ३९।।

पर जिनका भाग्य न अच्छा था,
उनको विश्वास नहीं आया।
जिनको जलकर ही मरना था,
उनको विश्वास नहीं आया।।
पर जो थे परम भाग्यशाली,
उनने तो पूरा लाभ लिया।
करके परिवर्तन आवश्यक,
इहभव परभव का लाभ लिया।। ४०।।

द्वीपायन मुनि जो चले गये,
थे छोड़ द्वारिका जंगल में।
उनको विकल्प ऐसा आया,
बाधा क्या आई मंगल में।।
अब बारह बरस हुये पूरे,
न समाचार कोई आया।
चलकर देखूँ क्या हुआ वहाँ,
ऐसा विकल्प मन में आया।। ४१।।

उनकी गिनती में एक भूल,
हो गई अनोखी संहारक।
तीन बरस में एक माह बढ़,
जाता सारा जग जानत।।
यह बात ध्यान में नहीं रही,
इस कारण चार माह पहले।
मन में जिज्ञासा लिये हुये,
आ गये द्वारिका द्वीपायन।। ४२।।

वह मदिरा जो फिकवा दी थी,
अति गहरे वन में जंगल में।
वह गढ्ढ़ों में ही भरी हुई,
अति मादक हो गई जंगल में।।
राजकुँवर जो गये हुये जल,
क्रीड़ा को उस जंगल में।
उसको पीकर मदमस्त हुये,
अर लड़े भयंकर दंगल में।। ४३।।

उनने देखा द्वीपायन को,
क्रोधित होकर यों चिल्लाये।
मारो मारो द्वीपायन है यह,
जो स्वयं द्वारिका सुलगाये।।
यह कहकर उन पर टूट पड़े,
फिर भी वे शान्त रहे इकदम।
ये रहे मारते पर तब तक,
जब लगा टूटने उनका दम।। ४४।।

उनको भी आया क्रोध प्रबल,
वे उबल पड़े धीरज खोकर।
तेजस लब्धि प्रगटी उनको,
अर लपटे छूटी प्रलयंकर।।
अरे द्वारिका नगरी सब,
जलने लगती है धू धू कर।
ज्वालायें फैली सभी जगह,
दिख रहीं भयंकर प्रलयंकर।। ४५।।

अरे द्वारिका तो देखो,
सागर के बीचों बीच बसी।
जहँ देखो तहँ पर पानी है,
पानी की कोई कमी नहीं।।
पानी अगनी का नाशक है,
यह उसे बुझाने वाला है।
क्षण में उसका विध्वंस करे,
यह ऐसी शक्ति वाला है।। ४६।।

फिर भी जब द्वारावती जली,
पानी कुछ काम नहीं आया।
पानी डाला भरपूर किन्तु,
अग्नी को बुझा नहीं पाया।।
ज्यों घी पड़ने से आग,
और तेजी से जलने लगती है।
ज्यों-ज्यों जल डाला लोगों ने,
त्यों आग भड़कने लगती है।। ४७।।

यह देख अचम्भें में सबजन,
अकुलाते हैं घबड़ाते हैं।
अर यह सब कैसे हुआ किन्तु,
वे कुछ ना समझा पाते हैं।।
जहँ से यन्त्रों से जल डाला,
वहाँ तो पेट्रोल आज भी है।
ज्वाला को करने शान्त लोग,
पेट्रोल डालते जाते थे।। ४८।।

जब होना होता कार्य स्वयं,
सब कारण सहज सिमट आते।
पाँचों समवाय सहज मिलते,
संयोग सहज मिलते जाते।।
अरे द्वारिका जलने के,
पाँचों समवाय उपस्थित थे।
कुछ भी होना न संभव था,
तेरे इन असद् विकल्पों से।। ४९।।

अरे द्वारिका का भविष्य,
आया था जिनवर वाणी में।
सभी द्वारिका वालों को,
समझाया जिनवर वाणी ने।।
कोई विकल्प कितने कर ले,
कुछ भी परिवर्तन न होगा।
ज्ञानीजन को स्वीकार सहज,
जो होना है वह ही होगा।। ५०।।

या तो दीक्षा ले लेना था,
या नगर छोड़कर जाना था।।
जलकर मरने से बचने का,
यह सहज उपाय सामने था।
क्यों नहिं अपनाया इसे प्रभो,
क्या कारण जान न पाया मैं।।
जब दिव्यध्वनि में आया तब,
क्यों कोई रहा द्वारिका में।। ५१।।

जिनवाणी पर विश्वास न था,
अत्यन्त लोभ सम्पत्ति का।
निर्णय करने की शक्ति न थी,
अन्दाज न था आपत्ति का।।
किंकर्त्तव्य मूढ़ता थी,
या यों ही समय जा रहा था।
अत्यन्त निकट था महाप्रलय,
पल-पल यों चला जा रहा था।। ५२।।

यही समझ में आता है कि,
होनहार ऐसी ही थी।
जो लोग वहाँ पर रुके रहे,
उनकी होनी ऐसी ही थी।।
हम यही मान सन्तोष करें,
वस्तु का यह स्वरूप समझे।
इसके अतिरिक्त उपाय नहीं,
क्यों व्यर्थ विकल्पों में उलझे।। ५३।।

छोड़ो विकल्प द्वारिका के,
अपने आतम की बात करो।
यह समय बहुत ही मूल्यवान,
उसको यों न बरबाद करो।।
निज को जानो निज को मानो,
निज आतम का ही ध्यान धरो।
इसमें न कोई बाधा है,
निज आतम का कल्याण करो।। ५४।।

(दोहा)

इसप्रकार चिन्तन करें, सम्यग्ज्ञानी जीव।
हर हालत में वे रहें, अन्तर्मुखी सदीव।। ५५।।

अरे द्वारिका व्यथा का, कोई ओर न छोर।
इसे छोड़कर अब चले, गिरनारी की ओर।। ५६।।

धर्मसभा जिनदेव की, उसमें करें प्रवेश।
दिव्यध्वनि में आ रहा, विमल तत्त्व उपदेश।। ५७।।

।। सोलहवाँ सर्ग समाप्त।।

सत्रहवाँ सर्ग

भगवान नेमिनाथ का तत्त्वोपदेश

(दोहा)

सौ इन्द्रों की हाजिरी, अर गणधर निर्ग्रन्थ।
नेमीश्वर समझा रहे, निश्चय मुक्तिपंथ।। १।।

(रोला)

निश्चय मुक्ति पंथ कहा निश्चय रत्नत्रय।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित निश्चय रत्नत्रय।।
निश्चय मुक्तिपंथ आतमा के आश्रय से।
प्रगटे जिनवर कहें सभा में भव्यजनों से।।२।।

परमशुद्ध निश्चयनय का है विषयभूत जो।
उस आतम में अपनापन है सम्यग्दर्शन।।
और उसे निजरूप जानना ज्ञान कहा है।
तथा उसी में जमना-रमना ध्यान[1] कहा है।। ३।।

---

१. चारित्र का उत्कृष्ट रूप आत्मध्यान ही है।

सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान अर ध्यान धरम है।
शुद्धातम का ध्यान धरम का परम मरम है।।
अरे ध्यान के पहले उसका ज्ञान जरूरी।
और ज्ञान के साथ विमल श्रद्धान जरूरी।। ४।।

अरे ज्ञान-श्रद्धान बिना न ध्यान कभी हो।
ज्ञान ध्यान श्रद्धा बिन न कल्याण कभी हो।।
यदि करना कल्याण आतमा का हे भाई !
ज्ञान ध्यान श्रद्धान करो आतम का भाई।। ५।।

ज्ञान ध्यान श्रद्धान आत्मा के आश्रय से।
होते हैं तो निज आतम पहिचान करो तुम।।
जिन आगम के आश्रय से अर सदुपदेश से।
करो प्रमाणित उसे आत्मा के अनुभव से।। ६।।

तनरूपी मन्दिर में है भगवान आतमा।
तन जड़ है पर चेतन है भगवान आतमा।।
यद्यपि वे हैं एकक्षेत्र अवगाही किन्तु।
फिर भी वे हैं पृथक्-पृथक् -जिन ऐसा कहते।। ७।।

रे परमातम देव विराजे मन मन्दिर में।
एवं आतमदेव विराजे तन मन्दिर में।।
मन मन्दिर के देव सातिशय पुण्य बंधावें।
तन मन्दिर के देव हमें शिवपुर पहुँचावें।। ८।।

मन मन्दिर के देव परमप्रिय परमातम हैं।
तन मन्दिर का देव हमारा निज आतम है।।
परमातम के चरणों में अति भक्तिभाव से।
करता हूँ मैं सत् श्रद्धा के सुमन समर्पित।। ९।।

अपने में अपनेपन की महिमा अद्भुत है।
अपने में अपनापन करता हूँ मैं अर्पित।।
अधिक कहूँ क्या हे परमातम निज आतम में।
अपनेपन से हो जाता हूँ स्वयं समर्पित।। १०।।

स्व-पर भेदविज्ञान धर्म का मूल तत्त्व है।
इसे प्राप्त कर भव्यजीव निज आतम पाते।।
निज आतम में अपनापन स्थापित कर वे।
निज आतम के ज्ञान-ध्यान में थिर हो जाते।। ११।।

बाँटो तुम दो भागों में सारी दुनियां को।
छाँटो फिर अपना आतम जो ज्ञानस्वभावी।।
ज्ञानतत्त्व अर ज्ञेयतत्त्व दो रूप जगत है।
ज्ञानस्वभावी आतम बाकी ज्ञेयतत्त्व हैं।। १२।।

ज्ञान ज्ञेय - दोनों बातें हैं आत्मतत्त्व में।
सभी अनातम भाव अकेले ज्ञेय भाव हैं।।
पर ज्ञेयों से भिन्न आतमा ज्ञानस्वभावी।
परम तत्त्व निज आतम ज्ञानानन्द स्वभावी।। १३।।

अरे देह में रहकर भी यह देह नहीं हैं।
यद्यपि इसमें राग किन्तु यह राग नहीं है।।
पर्यायों से पार आतमा ज्ञान पिण्ड है।
गुणभेदों से भिन्न प्रभु अति ही प्रचण्ड है।। १४।।

अरे ज्ञानघनपिण्ड आतमा निर्विकल्प है।
आनन्द का रसकन्द आतमा निर्विकल्प है।।
निर्विकल्प यह जीव विकल्पों में नहीं आता।
आतम अनुभवगम्य अतः अनुभव में आता।। १५।।

करो भावना अरे निरन्तर भेदज्ञान की।
भेदज्ञान की महिमा में नित चित्त लगाओ।।
अविरल धारा बहे ज्ञान में भेदज्ञान की।
भव्य भावना रहे ध्यान में भेदज्ञान की।। १६।।

भेदज्ञान के इस अविरल धारा प्रवाह से।
कैसे भी कर प्राप्त करे जो शुद्धातम को।।
और निरन्तर उसमें ही थिर होता जावे।
पर परिणति को त्याग निरंतर शुध हो जावे।। १७।।

भेदज्ञान की शक्ति से निजमहिमा रत को।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि निश्चित हो जावे।।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि होने पर उसके।
अतिशीघ्र ही सब कर्मों का क्षय हो जावे।। १८।।

आत्मतत्त्व की उपलब्धि हो भेदज्ञान से।
आत्मतत्त्व की उपलब्धि से संवर होता।।
इसीलिए तो सच्चे दिल से नितप्रति करना।
अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की।। १९।।

अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की।
सच्चे मन से बिन विराम के तब तक भाना।।
जब तक पर से हो विरक्त यह ज्ञान ज्ञान में।
ही थिर न हो जाय अधिक क्या कहें जिनेश्वर।। २०।।

अब तक जो भी हुए सिद्ध या आगे होंगे।
महिमा जानो एक मात्र सब भेदज्ञान की।।
और जीव जो भटक रहे हैं भवसागर में।
भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे हैं।। २१।।

भेदज्ञान से शुद्धतत्त्व की उपलब्धि हो।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि से रागनाश हो।।
रागनाश से कर्मनाश अर कर्मनाश से।
ज्ञान ज्ञान में थिर होकर शाश्वत हो जावे।। २२।।

मुक्तिमार्ग यह बतलाया अरहंत देव ने।
यह उपलब्ध सदा हमको है जिनवाणी में।।
गहराई से पढ़े मनन चिन्तन कर समझें।
समझ न आवे तो ज्ञानी गुरुओं से समझें।। २३।।

मुक्तिमार्ग के नेता ज्ञाता विश्व तत्त्व के।
वस्तु का स्वरूप समझाते दिव्यध्वनि से।।
हित उपदेशक अनेकान्त के स्याद्वाद के।
परम वीतरागी होते अरहंतदेव हैं।। २४।।

अनेकान्तमय सप्ततत्त्व की प्रतिपादक अर।
वीतरागता की पोषक जो जिनवर वाणी।।
परम अहिंसक सदाचार की भी पोषक जो।
अरिहंतों की दिव्यध्वनि वह जिनवाणी है।। २५।।

हर अन्तमुर्हुर्त्त में जो अन्तर्मुख होते।
महा तपस्वी परम अहिंसक महाव्रती जो।।
नय-प्रमाण के विशेषज्ञ हैं शान्त चित्त हैं।
ऐसे अद्‌भुत नग्नदिगम्बर जैन गुरु हैं।। २६।।

ऐसे देव-शास्त्र-गुरु एवं नव तत्त्वों के।
श्रद्धानी श्रावक होते हैं सम्यग्दृष्टि।।
यह व्यवहार कथन है लेकिन निश्चय से तो।
आतम के अनुभवी जीव हैं सम्यग्दृष्टि।। २७।।

देहादिक परद्रव्यों में अपनापन जिनके।
रागादि विकार भावों में भी अपनापन।।
पर्यायों में रमे रहें अपनापन करके।
मिथ्यादृष्टि जीव डूबते भवसागर में।। २७।।

(दोहा)

नव तत्त्वों में मुख्य दो, जीवाजीव प्रसिद्ध।
भिन्न-भिन्न जानो इन्हें, होवे कारज सिद्ध।। २९।।

चित् शक्ति सर्वस्व जिन, केवल वे हैं जीव।
उन्हें छोड़कर और सब, पुद्गलमयी अजीव।। ३०।।

वर्णादिक जो भाव हैं, वे सब पुद्गल जन्य।
एक शुद्ध विज्ञानघन, आतम इनसे भिन्न।। ३१।।

स्वानुभूति में जो प्रगट, अचल अनादि अनन्त।
स्वयं जीव चैतन्यमय, जगमगात अत्यन्त।। ३२।।

पुण्य-पाप रागादि सब, ये हैं आस्रव-बंध।
आतम इन से भिन्न है, वह है सदा अबंध।। ३३।।

वर्णादिक रागादि सब, हैं आतम से भिन्न।
अन्तर्दृष्टि देखिये, दिखे एक चैतन्य।। ३४।।

शुद्धि का होना प्रगट, निश्चय संवर जान।
शुद्धि की वृद्धि अहो, नियत निर्जरा खान।। ३५।।

प्रगटे पूरण शुद्धता, निश्चय मोक्ष बखान।
परगट परमानन्दमय, परमसिद्ध भगवान।। ३६।।

क्रियाकाण्ड से ना मिले, यह आतम अभिराम।
ज्ञानकला से सहज ही, सुलभ आतमाराम।।३७।।

अतः जगत के प्राणियो! छोड़ जगत की आश।
ज्ञानकला का ही अरे! करो नित्य अभ्यास।। ३८।।

अब तक जो कुछ किया, वह निश्चय व्याख्यान।
सुनो भव्य व्यवहार अब, आगम का आख्यान।। ३९।।

जितने प्राणी जगत में, वे सब जीव बखान।
प्राण रहित जो हो रहे, वे अजीव हैं जान।। ४०।।

द्रव्यकर्म का आगमन, आस्रव तत्त्व बखान।
उनका बंधना बंध है, आगम का व्याख्यान।। ४१।।

पुण्यास्रव पुनबंध हैं, पुण्यतत्त्व है जान।
पापबंध पापास्रवा, पापतत्त्व ही मान।। ४२।।

आना रुकना कर्म का, है संवर व्यवहार।
खिरना पूरव कर्म का, कहा निर्जरा सार।। ४३।।

सब कर्मों से छूटना, मोक्ष कहा सुखकार।
भव्यजीव जानों इसे, जीवों का व्यवहार।। ४४।।

नव तत्त्वों का कथन है, यों निश्चय–व्यवहार।
भव्यजीव समझो इन्हें, जिन आगम अनुसार।। ४५।।

जीव तत्त्व इक ध्येय है, अर अजीव हैं ज्ञेय।
पुण्य पाप अर आस्रव, बंध तत्त्व हैं हेय।। ४६।।

संवर एवं निर्जरा, एकदेश उपादेय।
मोक्षतत्त्व को कहा है, पूरण परम उपादेय।। ४७।।

नव तत्त्वों में है छुपी, आत्मज्योति सुखकार।
वही एक आनन्दमय, मुक्ति का आधार।। ४८।।

(हरिगीत)

निज तत्त्व का कौतूहली अर,
पड़ौसी बन देह का।
हे आत्मन्! जैसे बने,
अनुभव करो निजतत्त्व का।।
जब भिन्न पर से सुशोभित,
लख स्वयं को तब शीघ्र ही।
तुम छोड़ दोगे देह से,
एकत्व के इस मोह को।। ४९।।

है कामना यदि सिद्धि की,
ना चित्त को भरमाइये।
यह ज्ञान का घनपिण्ड,
चिन्मय आतमा अपनाइये।।
बस साध्य-साधक भाव से,
इस एक को ही ध्याइये।
अर आप भी पर्याय में,
परमातमा बन जाइये।। ५०।।

(रोला)

रे एकत्व ममत्व और कर्त्ता–भोक्तापन।
यदि होवे पर में तो मिथ्यादर्श कहा है।।
अरे नहीं है कोई भी परद्रव्य किसी का।
और नहीं है कोई किसी का कर्त्ता–भोक्ता।। ५१।।

सब अपने–अपने में ही परिपूर्ण तत्त्व हैं।
कर्त्ता–भोक्ता भी सब अपने–अपने ही हैं।।
दो द्रव्यों के बीच कोई संबंध नहीं है।
सब अपने–अपने में ही शोभित होते हैं।। ५२।।

अपना जीवन–मरण और अपना सुख–दुख सब।
अपने से अपने में होते निश्चित जानो।।
इसमें आशंका शंका को स्थान नहीं है।
यह सम्पूरण बात नेमि जिनवर की जानों।। ५३।।

इस जग का कर्त्ता कोई भगवान नहीं है।
सुनों भव्य यह बात मात्र इतनी ही नहीं है।।
एक द्रव्य है नहीं अन्य का कर्त्ता–धर्त्ता।
मूल बात तो यह है इसे ध्यान से जानों।। ५४।।

इसे भूलकर जो परके कर्त्ता बनते हैं।
वे अज्ञानी जीव चतुर्गति भ्रमण करेंगे।।
उनके भव का अन्त नहीं है दूर–दूर तक।
वे चौरासी लाख योनियों में घूमेंगे।। ५५।।

पुण्य भला अर पाप बुरा सारा जग कहता।
पर निश्चय से इनमें कोई भेद नहीं है।।
कर्मबंध के कारण तो दोनों ही होते।
कर्मबंध कटने का कारण कोई नहीं है।। ५६।।

सोने की बेड़ी पुण्य पाप लोहे की बेड़ी।
पर दोनों बंधन का कारण ही होती हैं।।
दोनों में से कोई नहीं मुक्ति का कारण।
इस परम सत्य का उद्घाटन जिनवाणी करती।। ५७।।

पुण्योदय से मिलती हमें भोग सामग्री।
उसे भोगने से बंधता है पाप निरन्तर।।
पापोदय से सभी भयंकर दुख को भोगें।
इस तरह पुण्य भी हो जाता दुखों का कारण।। ५८।।

पुण्य-पाप है कर्म जाति के जुड़वा भाई।
दोनों से ही कर्मबंध निश्चित होता है।।
अरे धर्म तो है अबंध का कारण भाई।
पुण्य धर्म कैसे हो सकता बोलो भाई।। ५९।।

अरे पुण्य जो कर्म आज वह धर्म बन रहा।
जो है पूरण हेय किन्तु उपादेय बन रहा।।
उपादेय तो एकमात्र बस वीतरागता।
परम धरम है एकमात्र वह वीतरागता।। ६०।।

(दोहा)

वीतरागता की अरे, शरण गहो सब लोग।
रागभाव हिंसा कहा, अतः त्यागने योग्य।। ६१ ।।

वीतराग परिणाम ही, केवल करने योग्य।
वीतरागता अहिंसा, परम धर्म है सोय।। ६२ ।।

नेमिनाथ ने जो दिया, विमल तत्त्व उपदेश।
अपनाओ भवि भाव से, जिनवर का आदेश।। ६३ ।।

।। सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ।।

अठारहवाँ सर्ग

समापन की ओर

(दोहा)

नेमिनाथ भगवान ने, दिया तत्त्व उपदेश।
भविजन ने ऐसे लिया, जैसे हो आदेश।। १।।

प्रीतिपूर्वक ग्रहण कर, सोचें बारंबार।
परम सत्य इस बात का, मन में करें विचार।। २।।

(रोला)

निज आतम की बात बताई नेमिनाथ ने।
परमातम की बात बताई नेमिनाथ ने।।
पुण्य-पाप की बात बताई नेमिनाथ ने।
सात तत्त्व की बात बताई नेमिनाथ ने।। ३।।

देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप भी समझाया है।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र भी बतलाया है।।
भेदज्ञान की महिमा भी भरपूर बताई।
आतम के अनुभव की पूरी विधि समझाई।। ४।।

(वीर छन्द)

भरत क्षेत्र में घूम-घूम वे, लौट द्वारिका आये हैं।
रेवतक गिरी के उपवन में ही, उन्हें आज ठहराये हैं।।
समोसरण की अद्‌भुत रचना, फिर बनकर तैयार हुई।
तीन गति के सब श्रोतागण, सुनने को तैयार हुये।। ५।।

पहले के ही समान फिर, एक बार उपदेश हुआ।
सदाचार पालन करने का, अतिपवित्र आदेश हुआ।।
परमशान्ति व्यापी सब जग में, लोग एकदम शान्त हुये।
प्रेमभाव से मिले परस्पर, कहीं न कोई क्लान्त हुये।। ६।।

(रोला)

अरे सात सौ वर्षों तक तो नित्य निरन्तर।
ऐसी ही अमृत वर्षा प्रतिदिन होती थी।।
भव्यजनों के महाभाग्य से सभी जनों को।
ऐसा अवसर प्रतिदिन ही मिलता रहता था।। ७।।

हजार वर्ष की आयु पूरी होने आई।
आयु कर्म ने सीमा रेखा है बतलाई।।
अब होगा निर्वाण नेमि जिनवर का भाई !
इसीलिये तो आज आतमा है अकुलाई।। ८।।

कल तक प्रतिदिन दिव्यध्वनि उनकी सुनते थे।
कल जब उनको नहीं मिलेगी दिव्यध्वनि तो।।
अपने अन्दर यह विचार आता है भाई !
उनके अन्तर आतम की क्या हालत होगी।। ९।।

योग निरोध होने से प्रवचन बन्द हो गये।
भव्यजनों को दर्शन अभी प्राप्त होते हैं।।
यद्यपि खेद बहुत भारी है सब लोगों को।
किन्तु दर्शनों से आकुलता कम हो जाती।। १०।।

एक माह उपरान्त तो दर्शन भी न होंगे।
यही सोचकर भव्य जीव आकुल हैं होते।।
सभी काम होते हैं बस केवल स्वकाल में।
यह जाने फिर भी क्यों आकुल-व्याकुल होते।। ११।।

यह पक्की है बात कि सबकुछ नक्की होता।
स्वभाव काल पुरुषार्थ निमित्त अर होनहार भी।।[1]
न जाने फिर भी क्यों ज्ञानी आकुल होते।
तीव्र राग के वश होकर वे व्याकुल होते।। १२।।

नेमिनाथ को मुक्ति में जब जाना होगा।
उसी समय वे मुक्तिवधू को प्राप्त करेंगे।।
एक समय पहले या बाद में कुछ न होगा।
ठीक समय पर मुक्ति रमा को वे परणेंगे।। १३।।

यद्यपि यह सब बात सभी जन विधिवत् जाने।
फिर भी तीव्र रागवश सब व्याकुल होते हैं।।
कमजोरी के कारण ज्ञानी भी अकुलाते।
फिर भी वे अपनी व्याकुलता कम कर लेते।। १४।।

---

१. दूसरी पंक्ति में पाँच समवायों के नाम हैं।

आतम का कल्याण स्वयं से सबका होता।
तीर्थंकर सहयोग भी उसमें काम न आता।।
हम अपना कल्याण स्वयं से स्वयं करेंगे।
नेमिनाथ यदि जाते हैं तो जाने भी दो।।१५।।

नहीं उपेक्षा नेमिनाथ के योगदान की।
यह तो केवल अटल तथ्य की स्वीकृति ही है।।
समय आ गया प्रभुवर के जाने का पक्का।
सहज भाव से स्वीकृत करने का प्रयास है।।१६।।

जब जैसा जो कुछ होता स्वीकार सहज वह।
उसमें फेरफार करने की बुद्धि न होवे।।
यही मार्ग है और न कोई मारग भाई।
हे भगवन् ! हमसे ऐसा अपराध न होवे।। १७।।

नेमिनाथ से हमें जानना था जो भाई।
वह सब हमने जान लिया है दिव्यध्वनि से।।
अब हमको अपने में रमना जमना होगा।
यह ही है सन्मार्ग एक मुक्ति का भाई।। १८।।

नेमिनाथ मुक्ति में जाते हैं तो जावो।
हम भी अब अपने में जाते ध्यान लगाते।।
आप स्वयं में गये और अब हम जाते हैं।
हे भगवन् ! अब आप चलें हम भी आते हैं।। १९।।

जो सच्चा है भक्त भावना उसकी ऐसी।
ऐसा होता भक्त और भक्ति भी ऐसी।।
कहा आपने सभी स्वयं में रमे जमे तो।
सब रमने जमने को भी तैयार हो गये।। २०।।

एक माह उपरान्त अरे वह दिन भी आया।
जब विदेह हो गये जिनेश्वर देह त्यागकर।।
अन्तिम उत्सव किया सभी इन्द्रों ने मिलकर।
और द्वारिका वासी भी उसमें शामिल थे।। २१।।

कल तक दर्शन मिलते थे वाणी न सही पर।
दर्शन भी तो सर्व पापमल नाशक भाई।।
आज न दर्शन न ही दिव्यवाणी मिलती है।
अब हम हैं अपने पर पूरे निर्भर भाई।। २२।।

अरे परम साधक तो स्वयं में समा गये हैं।
पर साधक पूरे प्रयासरत रहते भाई।।
श्रावकगण ने जिनमन्दिर निर्माण कराये।
उनके भीतर शुद्ध ज्ञान मन्दिर बनवाये।। २३।।

जिनमंदिर में भक्ति का प्रवाह उमड़ेगा।
और ज्ञान मंदिर में ज्ञान की वर्षा होगी।।
ज्ञान और भक्ति का अद्भुत संगम होगा।
नेमिनाथ के उपदेशों की चर्चा होगी।। २४।।

नेमिनाथ तो गये परन्तु जगहितकारी।
उनकी वाणी सारे जग को मार्ग दिखाती।।
अरे आज भी विद्यमान है भरत क्षेत्र में।
महाभाग्य यह भव्यजनों को मार्ग दिखाती।। २५।।

जिनबिम्बों के दर्शन उनके दर्शन होंगे।
जिनवाणी का स्वाध्याय अर वाचन होगा।।
पठन–मनन–चिन्तन–अनुशीलन सब कुछ होगा।
ज्ञानी का सत्संग मिले तो प्रवचन होगा।। २६।।

ये जिनमन्दिर समोसरन के ही प्रतीक हैं।
इनमें वह ही होता है जो समोसरन में।।
अरे लाभ भी इनसे भी वैसा ही होगा।
जैसा होता है भविजन को समोसरन में।। २७।।

भव्यजीव तो अपना हित कर ही लेते हैं।
निकट भव्य दो–तीन भवों में मुक्ति पाते।।
दूर भव्य भी तो स्वकाल में सिद्ध हो जाते।
अन्य भव्य भी अधिक काल भव में न घूमे।। २८।।

अर अभव्य भी यद्यपि मुक्त नहीं होते हैं।
पर वे भी व्यवहार धर्म का पालन करके।।
शुभ परिणामों के प्रभाव से जग सुख भोगें।
अधिक कहे क्या वे नववें ग्रैवेयक तक जाते।। २९।।

परम अहिंसक परमहंस नामक परमति भी।
स्वर्ग बारहवें के आगे न जा पाते हैं।।
द्रव्यलिंगी मुनि जैन आचरण के बलबूते।
नववें ग्रैवेयक तक सहज पहुँच जाते हैं।। ३०।।

यद्यपि यह कुछ नहीं, किन्तु जो कुछ भी होता।
वह सब जिनवर कथित अहिंसक सदाचार का।।
ही फल जानो भव्य आतमा अतः सभी जन।
जैन आचरण पालो अन्तरमन से भाई।। ३१।।

त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त कर।
उनका भी उपकार किया है श्री जिनवर ने।।
अरे ! सभी की उपकारक जिनवाणी होती।
जिनवाणी स्वाध्याय करो सब लोग निरन्तर।। ३२।।

जिनदेव और गुरुदेव न हों तो क्या हो सोचो।
एकमात्र जिनवचनों का ही परमशरण है।।
जिनवाणी अभ्यास करो हे भविजन प्राणी।
भव-भव में भव-भ्रमण न हो न जनम-मरण हो।। ३३।।

(दोहा)

एकमात्र जिनवचन ही, हैं कलियुग में सार।
परम शरण सबके लिये, एकमात्र आधार।। ३४।।

नेमिनाथ का परिकर

पाँच शतक तैतीस श्री, मुनिवर्यों के साथ।
योग निरोध किया प्रभो, एक माह इक साथ।।३५।।

केवलज्ञान हुये हुये, छहसौ निन्यानवें वर्ष।
चार दिवस छह माह में, पाया है अपवर्ग।।३६।।

हजार वर्ष की आयु को, पूर्ण किया भगवान।
आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को, मुक्त हुये गुणखान।। ३७।।

अष्टकर्म का नाशकर, बने सिद्ध भगवान।
अव्याबाध अनन्त सुख, पायो श्री भगवान।। ३८।।

अव्याबाध अनंत सुख, भोगें काल अनंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, नेमिनाथ भगवन्त।। ३९।।

नेमिनाथ भगवान के, गणधर ग्यारह जान।
पाठी बारह अंग के, वरदत्तादि महान।। ४०।।

राजमतीजी आर्यिका, गणनी प्रमुख बखान।
उग्रसेन राजा प्रमुख, श्रोता श्रावक जान।। ४१।।

राजमतीजी आर्यिका, गईं सोलहवें स्वर्ग।
अब आगे अतिशीघ्र ही, पावेंगी अपवर्ग।। ४२।।

(वीर छन्द)

सहस्र अठारह मुनीराज, चालीस सहस्र आर्यिकायें।
एक लाख श्रावकगण समझो, तीन लाख श्राविकायें।।
देव-देवियाँ असंख्यात अर, संख्यात तिर्यग्योनि।
उनका प्रवचन सुनने आते, सब ही जाते सम्यकयोनि।। ४३।।

।। अठारहवाँ सर्ग समाप्त।।

अन्तिम प्रशस्ति

(दोहा)

नेमिनाथ का चरित यह, है वैराग्य प्रधान।
राजुल का जीवन रहा, है विराग की खान।। १।।

इसी लिये इस कृति का, नाम रखा 'वैराग्य'।
सब के जीवन में रहे, अरे सदा वैराग्य।। २।।

अद्‌भुत है वैराग्य यह, सम्यग्ज्ञान प्रधान।
इस की महिमा अगम है, यह वैराग्य महान।। ३।।

पढे सुने जो ध्यान से, श्रद्धा भक्ति प्रमाण।
उस का होगा नियम से, अरे! आत्मकल्याण।। ४।।

जीवन गाथा कही है, नेमिनाथ निर्ग्रन्थ।
अति प्रसन्नता पूर्वक, पूर्ण हुआ यह ग्रन्थ।। ५।।

दो हजार सोलह तथा, माह मार्च सतबीस।
चैत्र कृष्ण की चतुर्थी, रविवार जगदीश।। ६।।

।। वैराग्य नामक महाकाव्य समाप्त ।।